अंक 43, नवंबर- दिसंबर 2022

₹ 50/-

भारत का संविधान

सरल अनुवाद

ISSN: 2454-6874

अंक – 43, नवंबर-दिसंबर 2022

सम्पादक **सुभाष चंद्र**

सह-संपादक अरुण कैहरबा

सम्पादन सहयोग जयपाल, कृष्ण कुमार, राजकुमार जांगड़ा ,विकास साल्याण

सलाहकार प्रो. टी.आर. कुंडू, सुरेन्द्रपाल सिंह, परमानंद शास्त्री,
अशोक भाटिया, सत्यवीर नाहड़िया

प्रबंधन कीर्ति सैनी, योगेश शर्मा, गुरदीप भोंसले

प्रकाशक सत्यशोधक फाउंडेशन, 912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र हरियाण

संपर्क सुभाष चंद्र 94164-82156, विकास साल्याण - 9050182156

Email haryanades@gmail.com

Website desharyana.in

सहयोग राशि **एक प्रति मात्र 50 ₹**

व्यक्तिगत: **वार्षिक ₹ -300 संस्था: वार्षिक ₹ -500**
(पंजीकृत डाक खर्च समेत)

आजीवन: **₹5000 संरक्षक : ₹ 10000**

ऑनलाईन भुगतान के लिए

Account Name **Satyashodhak Foundation**
Bank Name **Indian Bank, Sector -13**
Account No. **50490177180**
IFSC: **IDIB000K849**

देसहरियाणा : ISSN -2454-6879
अंक – 43, नवंबर-दिसंबर 2022

भारत का संविधान
सरल अनुवाद

सत्यशोधक फाउंडेशन की संस्थापक
स्वर्गीया श्रीमती विपुला जी
की स्मृति में सादर

देश का निर्माण उसमें रहने वाले लोग करते हैं न कि संविधान के उपबंध। लोग ही देश के संविधान को चला सकते हैं अथवा उसे नष्ट कर सकते हैं। हमारे संविधान में महान सृजनात्मक शक्ति निहित है। इसमें इस राष्ट्र की शांति, प्रगति और समृद्धि की योजना निर्धारित की गई है। इसमें एक कल्याणकारी समाज और न्याययुक्त सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की परिकल्पना की गई है। हमारे संविधान ने हमें किसी प्रकार से भी धोखा नहीं दिया है। आवश्यकता इश बात की है कि हम संविधान की कसौटी पर खरे उतरें।

- **जस्टिस के. सदानंद हेगड़े**

(स्रोतः भारतीय संविधान में राज्य-नीति के निदेशक तत्त्व, सांविधानिक तथा संसदीय अध्ययन संस्थान, नई दिल्ली के तत्त्वावधान में रिसर्च दिल्ली से प्रकाशित)

अनुक्रम

हर हाथ में संविधान की मुहिम में शामिल हों

भारत का संविधान एक ऐसी राष्ट्रीय व आदरणीय पुस्तक है जिसमें केवल कानून और उनको लागू करने के प्रावधान नहीं हैं, बल्कि भारतीय समाज का विश्लेषण और वांछित भावी समाज का नक्शा भी प्रस्तुत किया गया है। संविधान निर्मात्री सभा के कुल 296 सदस्यों (कांग्रेस के 205, मुस्लिम लीग के 73 तथा 18 स्वतंत्र प्रतिनिधि सदस्य) ने इसमें लिखित एक-एक शब्द पर घंटों-घंटों गंभीरता व सूक्ष्मता से विचार-विमर्श किया। 90 हजार शब्दों में अनेक प्रावधानों व प्रक्रियाओं को समाहित किये हुए संविधान को तैयार करने में करीब तीन साल का समय लगा। अनेक देशों के कानूनों व प्रक्रियाओं का अध्ययन करके उनके बेहतरीन पक्षों को इसमें शामिल किया गया। संविधान की मूल भावना को समझने के लिए इसकी निर्माण प्रक्रिया को समझना अनिवार्य है।

भारत के संविधान का निर्माण स्वतंत्रता मिलने से नौ महीने पहले ही आरंभ हो गया था। 1946 में संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव प्रांतीय विधान-सभाओं द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के आधार पर किया गया था। डा. सच्चिदानंद सिन्हा की अध्यक्षता में 9 दिसंबर 1946 को संविधान सभा का पहला अधिवेशन हुआ था। डा. राजेंद्र प्रसाद को संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष के रूप में 11 दिसंबर 1946 को चुना गया। इस तरह भारत का संविधान 9 दिसंबर 1946 से लेकर 26 नवंबर 1949 तक हुई बहसों और विचार-विमर्श का परिणाम है। इस विचार-विमर्श में सभी विषयों पर विभिन्न पक्षों से विचार हुआ।

संविधान सभा ने अपना उद्देश्य 22 जनवरी 1947 को प्रस्ताव पारित करके स्पष्ट कर दिया था। यह प्रस्ताव पं. जवाहर लाल नेहरु ने प्रस्तुत किया था इस प्रस्ताव में पांच उद्देश्य रखे गए थे।

1. भारत में स्वतंत्र एवं सार्वभौम गणराज्य की स्थापना और अपना संविधान बनाना।

2. भारतीय संघ एवं संघ की इकाईयों यानी राज्यों में समस्त सार्वभौम सत्ता का स्रोत जनता होगी।

3. भारत के सभी निवासियों को (क) सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय, (ख) पद, अवसर एवं कानून के समक्ष समानता तथा (ग) विचार, भाषण, अभिव्यक्ति और विश्वास रखने की स्वतंत्रता होगी।

4. अल्पसंख्यकों, पिछड़े वर्गों तथा अनुसूचित जातियों के हितों की रक्षा के लिए व्यवस्था करना।

5. भारत की अखंडता रखते हुए इस प्राचीन देश को विश्व में उचित तथा सम्मानपूर्ण स्थान दिलाना तथा विश्व-शांति बनाये रखने और मानव कल्याण की दिशा में योगदान देना।

29 अगस्त 1947 को संविधान सभा ने संविधान का प्रारूप तैयार करने के लिए सात सदस्यीय प्रारूप समिति का गठन किया। डा. भीमराव आंबेडकर इसके अध्यक्ष थे और श्री गोपाल स्वामी आयंगर, श्री अल्लादी कृष्णा स्वामी अय्यर, श्री के. एम. मुंशी, श्री सैयद मोहम्मद सादुल्ला, श्री एन. माधवराव व श्री डी. पी. खेतान इसके सदस्य थे। यहां इस बात का जिक्र करना भी अप्रासंगिक नहीं है कि संविधान का प्रारूप बनाने में डा. अंबेडकर ने अपनी खराब सेहत के बावजूद पूरी लगन व मेहनत से कार्य किया। प्रारूप समिति के अन्य सदस्य विभिन्न कारणों से अधिक योगदान नहीं कर पाए।

जवाहर लाल नेहरु द्वारा प्रस्तुत पहले प्रस्ताव से ही संविधान की दिशा तय हो गई थी। प्रस्तावना में ही लोकतांत्रिक गणतंत्र, सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक न्याय, कानून के समक्ष समानता, भाषण व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता व कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने की दिशा स्पष्ट थी। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रावधानों व प्रक्रियाओं पर चर्चाओं के अनेक दौर चले सदस्यों की तीखी बहसों के दस्तावेज इस बात के प्रमाण हैं।

आजादी प्राप्त होते ही भारत देश-विभाजन की त्रासदी के एक महासंकट से गुजरा। सांप्रदायिक दंगों के भयावह परिवेश व असुरक्षा में आबादियों के देशान्तरण का सिलसिला लंबे समय तक चलता रहा। इस वातावरण में नागरिकता के प्रावधानों के

मानदण्ड व शर्तें निश्चित करना एक पेचीदा मामला था, लेकिन संविधान निर्माताओं की संवेदनशीलता, मानवीयता व वैश्विक सूझ-बूझ ने नागरिकता के सम्यक प्रावधान बनाए।

विश्व में नागरिकता के मुख्यतः तीन आधार हैं

(क) रक्त संबंधों के आधार पर - किसी व्यक्ति के माता-पिता की नागरिकता के अनुसार।

(ख) जन्म भूमि के आधार पर – किसी व्यक्ति के जन्म-स्थान के अनुसार।

(ग) रक्त संबंध और जन्मभूमि दोनों के आधार पर – किसी व्यक्ति को उसके माता-पिता की नागरिकता के अनुसार तथा उसके जन्म स्थान के अनुसार।

भारत के संविधान निर्माताओं ने मुख्यतौर पर तो जन्म-स्थान के आधार पर ही मान्यता दी है, लेकिन रक्त संबंधों को भी पूर्णतः त्याग नहीं दिया। नागरिकता संबंधी प्रावधानों को अंतिम नहीं, बल्कि नागरिकता की प्राप्ति, समाप्ति व इससे संबंधित विषयों के बारे में कानून बनाने की शक्ति संसद को प्रदान की।

भारत की नागरिकता के संबंध में धर्म, जाति, नस्ल, भाषा, क्षेत्र आदि के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया गया, बल्कि संकीर्ण भावनाओं को हतोत्साहित करने के लिए एकल नागरिकता को ही मान्यता दी गई।

भारत के संविधान निर्माताओं ने जनतांत्रिक शासन प्रणाली को अपनाया। जनतांत्रिक सरकार की शक्ति का स्रोत जनता है, राज्य से अपेक्षा की जाती है कि अपने कार्यों व नीतियों में वह नागरिकों के हितों का प्रतिनिधित्व करे। नागरिकों के हितों और राज्य के हितों में कोई विरोधाभास या अंतर्द्वंद्व ना हो।

जनतांत्रिक प्रणाली में नागरिक का विशेष महत्व है। किसी नागरिक के अधिकारों का अन्य नागरिकों द्वारा या राज्य द्वारा अतिक्रमण से संरक्षण करना जनतांत्रिक सरकारों का दायित्व है। लोकतंत्र में राज्य हो या नागरिक किसी के अधिकार असीमित नहीं हो सकते। जनतांत्रिक प्रणाली सुचारू रूप से चले इसके लिए संविधान में दो उपाय किए गएः

(क) कार्यपालिका, विधानपालिका व न्यायपालिका के संगठन और शक्तियों का आधार जनतांत्रिक रखा।

(ख) शासनसत्ता और नागरिकों के मूल अधिकारों के बीच संतुलन जनतांत्रिक रखा।

भारत का संविधान नागरिक को मूल अधिकारों की लिखित में गारंटी देता है। मूल अधिकार सामान्य अधिकारों से अलग होते हैं।

(क) मूल अधिकारों को संविधान संशोधन की प्रक्रिया से ही बदला जा सकता है, साधारण प्रक्रिया से नहीं बदला जा सकता।

(ख) राज्य का कोई भी अंग कार्यपालिका, विधानपालिका और न्यायपालिका मूल अधिकारों के विपरीत कार्य नहीं कर सकता।

(ग) मूल अधिकार राजनीतिक मतभेदों से ऊपर हैं और उनका संरक्षण सर्वोच्च न्यायालय करता है।

भारतीय संविधान में सात मूल अधिकार दिए गए हैं।

(क) समानता का अधिकार

(ख) स्वतंत्रता का अधिकार

(ग) शोषण के विरुद्ध अधिकार

(घ) धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार

(ङ) सांस्कृतिक-शैक्षणिक अधिकार

(च) संपत्ति का अधिकार

(छ) संवैधानिक उपचारों का अधिकार

इनमें से पहले छः अधिकार सकारात्मक हैं, क्योंकि इनके माध्यम से नागरिक को विकास व गरिमापूर्ण जीवन जीने में सहायता मिलती है और प्रत्येक अधिकार की पृथक सत्ता एवं स्वतंत्र अस्तित्व है।

सातवां अधिकार, सकारात्मक अधिकारों के उल्लंघन होने पर उन्हें प्राप्त करने के लिए 'प्रक्रियात्मक अधिकार' है। संवैधानिक उपचारों का अधिकार अन्य मूल अधिकारों को प्राप्त करने का माध्यम है इसलिए सबसे महत्वपूर्ण भी है। इसके महत्व को स्वीकार करते हुए अनुच्छेद 32 के बारे में डा. अंबेडकर ने संविधान सभा की बहस में कहा था कि "यदि मुझसे संविधान में सबसे महत्वपूर्ण अनुच्छेद के लिए पूछा जाए – ऐसा अनुच्छेद जिसके बिना संविधान निरर्थक हो जाएगा, तो मैं सिवाय इस अनुच्छेद के किसी अन्य अनुच्छेद की ओर संकेत नहीं करूंगा। यह संविधान की आत्मा है, उसका हृदय है।"

हमारे संविधान का दर्शन संविधान के भाग 3 (मूल अधिकार) व भाग 4 (राज्य के नीति निर्देशक तत्व) में निहित है। इनमें लक्ष्यों और उनको प्राप्त करने के तरीकों का उल्लेख किया गया है। इनकी अवहेलना असल में संविधान के आधारभूत सिद्धांतों व आदर्शों तथा देश की जनता को किये गए वायदे की अवहेलना करना है।

मूल अधिकारों और राज्य के नीति निदेशक तत्त्व अलग-अलग नहीं हैं, बल्कि एक ही लक्ष्य को प्राप्त करने अलग-अलग उपाय हैं। जस्टिस के. सदानंद हेगड़े ने सही कहा है

कि "मूल अधिकारों का प्रयोजन एक समतापूर्ण समाज की सृष्टि करना, समस्त नागरिकों को समाज के प्रतिबंधों और दबावों से मुक्त करना तथा उनके लिए स्वतंत्रता का स्वर्णविहान लाना है। निदेशक सिद्धांतों का प्रयोजन शांतिपूर्ण तरीकों से सामाजिक क्रांति का पथ प्रशस्त कर कुछ सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों को तत्काल सिद्ध करना है। इस प्रकार की सामाजिक क्रांति के माध्यम से संविधान सामान्य व्यक्ति की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करना और हमारे समाज की संरचना में परिवर्तन करना चाहता है। वह भारतीय जनता को सचमुच मुक्त करना चाहता है।" (राज्य के नीति निदेशक तत्व, पृ.-4)

यह भी गौर करने की बात है कि मूल अधिकार और नीति निर्देशक तत्व किसी विशेष व्यक्ति अथवा किसी विशेष समूह की बौद्धिक मशक्कत का परिणाम नहीं हैं, बल्कि इनकी उत्पति ऐतिहासिक परिस्थितियों में विचारों-आदर्शों और सामाजिक शक्तियों के संघर्षों का परिणाम हैं। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान अंग्रेजी शासकों द्वारा आंदोलनकारियों पर दमन, अत्याचार, नजरबंदी, समाचार पत्रों पर प्रतिबंध, विचारों की अभिव्यक्ति पर कठोर सजाएं आदि होती थीं। जन साधारण के जीवन के सुधार व प्रगति के लिए सरकार से सामाजिक-आर्थिक स्तर पर अनेक कदम उठाने की मांग की जाती थी। उस दौरान ही मूल अधिकारों और राज्य के नीति निदेशक तत्वों को अपनाने की प्रक्रिया शुरु हो गई थी।

मूल अधिकार और राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत एक पूर्ण इकाई है। एक में नागरिक के सामाजिक-राजनीतिक अधिकार, समानता और न्याय की बात की गई है तो दूसरे में इन अधिकारों को प्राप्त करने के लिए आर्थिक स्थितियों के निर्माण की दिशा बताई गई है। संविधान निर्माताओं को इस बात का पूरा अहसास था कि यदि नागरिक आर्थिक तौर पर सक्षम नहीं होंगे तो उसके राजनीतिक अधिकार संविधान के पन्नों पर लिखे ही रह जायेंगे उसके जीवन का हिस्सा नहीं बन पायेंगे।

जवाहरलाल नेहरु ने इस विषय में कहा है कि "हम स्वतंत्रता की चर्चा करते हैं, किंतु जब तक आर्थिक स्वतंत्रता नहीं है, तब तक केवल राजनैतिक स्वतंत्रता ही हमें आगे नहीं ले जा सकती। वास्तव में, एक व्यक्ति जो भूखा मर रहा है या एक देश जो गरीब है, उसके लिए स्वतंत्रता का कोई अर्थ ही नहीं है। ...सरकार का स्वरूप आखिरकार किसी उद्देश्य की प्राप्ति का केवल एक साधन ही है। स्वतंत्रता भी केवल एक साधन है, जबकि उद्देश्य है – लोक कल्याण, मानव प्रगति व गरीबी, बीमारी और पीड़ा को समाप्त करना और प्रत्येक व्यक्ति को भौतिक तथा बौद्धिक दृष्टि से अच्छे जीवन व्यतीत करने का अवसर प्रदान करना।" (भारतीय शासन और राजनीति, पृ.- 59)

राज्य के नीति निर्देशक तत्वों को बेशक न्यायालय द्वारा लागू नहीं करवाया जा सकता, लेकिन राज्य के कल्याणकारी चरित्र के लिए इनकी जरूरत महसूस की गई। संविधान सभा की बहस में डा. अंबेडकर ने स्पष्ट तौर पर इनके उद्देश्य के बारे में कहा था कि "राज्य-नीति के निदेशक सिद्धांतों को मात्र नैतिक आदेश बनाने का कभी भी उद्देश्य नहीं था। संविधान सभा का यह उद्देश्य है कि भविष्य में विधायिका और कार्यपालिका दोनों ही इन सिद्धांतों के प्रति केवल औपचारिकता का दृष्टिकोण न अपनाएं, बल्कि उन्हें उन विधायी और कार्यकारी कार्यों का आधार बनाने का प्रयास करें जो भविष्य में देश के शासन के संदर्भ में किये जायेंगे।" (राज्य के नीति निदेशक तत्व – पृ. 27)

भारतीय संविधान निर्माताओं की महाबहस से संविधान बना, लेकिन विडम्बना ही कही जायेगी कि भारतीय जनमानस और राज्य के विभिन्न संगठनों में कार्यरत अधिकारियों ने भी संविधान को अपने दिशासूचक के तौर पर हृदय से नहीं अपनाया। नागरिकों में संविधान की चेतना नहीं पनपी, परिणामस्वरूप न तो उनमें अपने अधिकारों के प्रति जागरुकता पैदा हुई और न ही कर्तव्यों के प्रति।

संविधान व कानून के प्रति ऐसी उदासीनता शायद ही किसी देश में रही होगी। भारतीय समाज में यदि कोई अपने अधिकारों की मांग करता है जो समाज में बड़ी हिकारत एवं व्यंग्य से खिल्ली उड़ाई जाती है कि 'बड़ा आया कानून छांटने वाला', या 'मुझे कानून ना सिखा'। इस प्रवृत्ति के चलते संविधान जो जनमानस का हिस्सा होना चाहिए था वह केवल वकीलों और जजों के परिसरों तक सीमित रह गया। न्याय प्राप्त करने की जटिल, उबाऊ व थकाऊ प्रक्रिया और वकीलों की तिकड़मों के कारण जन साधारण का कानून से ही मोहभंग होने लगा।

संविधान के प्रति जनता की उदासीनता और मोहभंग समाज के वर्चस्वी लोगों के खूब काम आई। समाज के सामंतशाह-पूंजीशाह ही नहीं, बल्कि सरकार के अंग जो संविधान की अनुपालना की शपथ लेते हैं वही संविधान की मूल भावना और संवैधानिक प्रक्रियाओं की खुल्लम-खुल्ला धज्जियां उड़ाने लगे। नागरिकों के मूल अधिकारों का हर पल उल्लघंन हो रहा है। सरकारें संविधान में दिए गए नीति-निदेशक तत्वों को बोझ समझने लगी हैं और कल्याणकारी राज्य, नागरिकों के व्यक्तित्व-विकास के लिए शिक्षा-स्वास्थ्य जैसी सेवाओं से भी पल्ला झाड़ रही हैं।

25 नवंबर 1949 को डा. आंबेडकर ने जो कहा था वही सत्य सिद्ध हो रहा है उनके शब्दों को याद करना अप्रासंगिक नहीं है। उन्होंने कहा था कि

'संविधान कितना ही अच्छा हो, मगर इसका इस्तेमाल करने वाले लोग बुरे होंगे, तो यह बुरा साबित होगा। और अगर संविधान बुरा है, पर उसका इस्तेमाल करने वाले अच्छे लोग होंगे तो संविधान भी अच्छा सिद्ध होगा'।

... 'संविधान पर अमल केवल संविधान के स्वरूप पर निर्भर नहीं करता। संविधान केवल विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका जैसे राज्य के अंगों का प्रावधान कर सकता है। उन अंगों का संचालन लोगों पर तथा उनके द्वारा अपनी आकांक्षाओं तथा अपनी राजनीति की पूर्ति के लिए बनाये जाने वाले राजनीतिक दलों पर निर्भर करता है।'

...'भविष्य में हम अपनी आजादी को बरकरार रख पाएंगे या खो देंगे, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि हम अपने संवैधानिक दायित्वों को कितना पूरा कर पाते हैं और राजनीतिक लोकतंत्र को कितना सामाजिक लोकतंत्र में बदल पाते हैं। हमारी आजादी का एक ही दुश्मन है, वह है असमानता। चाहे वो जातिगत हो, आर्थिक या सामाजिक। यदि हमने इन्हें दूर नहीं किया तो एक दिन ऐसा आएगा जब हम अपनी आजादी खो बैठेंगे'।

हमारा मानना है कि भारत का संविधान केवल शासकों, राजनीतिज्ञों और वकीलों-न्यायाधीशों के मार्गदर्शन के लिए ही नहीं, बल्कि हर नागरिक के लिए अपने अधिकारों व कर्तव्यों को जानने के लिए भी आवश्यक है। प्रसन्नता का विषय यह है कि पिछले कुछ समय से 'संविधान बचाओ' की चर्चाएं सड़कों व गली-कूचों में सुनाई देने लगी है, विशेषकर अंबेडकरवादियों ने संविधान की रक्षा का जिम्मा लिया और वे 'संविधान बचाओ' का नारा देकर बैनर, झंडों और तख्तियों के साथ विभिन्न अवसरों पर हजारों व लाखों की संख्या में सड़कों पर देखे गए हैं।

संविधान बचेगा तो लोकतंत्र बचेगा और आम साधारण नागरिक को अधिकारों व व्यक्तित्व के विकास के अवसर मिलेंगे। संविधान हर नागरिक को गरिमा, सुरक्षा और प्रगति के अवसर प्रदान करता है, तो संविधान की गरिमा की रक्षा करना भी हरेक नागरिक का दायित्व बन जाता है। लेकिन चुनौती यही है कि लोगों को संविधान के मूल्यों और चेतना से कैसे जोड़ा जाए।

भारतीय संविधान के प्रति जन साधारण की उदासीनता का एक कारण भारतीय भाषाओं में विशेषकर हिंदी में संविधान का अनुवाद भी है। उपलब्ध अनुवाद के माध्यम से कोई साधारण नागरिक कुछ भी समझ नहीं पाएगा। लोग अपने संविधान को जानें और उससे जुड़ें इसी प्रयास में यह प्रकाशन किया जा रहा है।

संविधानविद आदरणीय श्री कनक तिवारी का धन्यवाद, जिन्होंने इस बात के लिए प्रेरित किया कि संविधान का जन उपयोगी सरल अनुवाद किया जाए। वे 'देस हरियाणा'

पत्रिका द्वारा आयोजित चौथे हरियाणा सृजन उत्सव में 14-15 मार्च 2020 को 'हम भारत के लोग और भारत का संविधान' विषय पर वक्तव्य देने के लिए रायपुर (छतीसगढ़) से कुरुक्षेत्र पधारे थे। भाषण के दौरान बड़ी पीड़ा से उन्होंने ये बात कही थी कि संविधान का हिंदी में अनुवाद बेहद अटपटा, कृत्रिम, नीरस है और इसके सरल अनुवाद का आग्रह भी किया था और अनुवाद में भी उन्होंने मदद की। उसी का परिणाम है यह प्रयास।

यहां संविधान के केवल चार भागों (1 से लेकर 51 अनुच्छेदों) का अनुवाद प्रस्तुत किया गया है, जिसमें संविधान का पूरा दर्शन समाहित है। संवैधानिक प्रक्रियाओं, विभिन्न लोकतांत्रिक संस्थाओं के गठन, न्याय पालिका-कार्यपालिका-विधानपालिका की शक्तियों का विभाजन आदि को फिलहाल शामिल नहीं किया गया। यदि जरूरत महसूस हुई तो बाद में उसको भी प्रस्तुत किया जाएगा।

संविधान की मूल भावना को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए संविधान सभा में दिए गए चार भाषणों को भी दिया जा रहा है। इनमें दो भाषण जवाहरलाल नेहरू के हैं और दो भाषण डा. भीमराव आंबेडकर के हैं। मेरा मानना है कि भारतीय संविधान की मूल भावना को जानने- समझने के लिए इन भाषणों का अध्ययन आवश्यक है। इन भाषणों में संविधान का दर्शन, उद्देश्य, स्वरूप व तत्संबंधी अनेक आशंकाओं-आलोचनाओं के उत्तर मिलते हैं। भारतीय संविधान प्रावधानों के साथ-साथ भारतीय सामाजिक व्यवस्था का तथ्यपरक विश्लेषण व प्रगतिशील व सर्वसमावेशी समाज निर्माण की दिशा की ओर संकेत करता है। संविधान के प्रावधानों की शक्तियों और सीमाओं के साथ-साथ उसे लागू करने वाले नेताओं-अधिकारियों के दायित्वों और मंशाओं को भी सामने रखा है। उम्मीद है कि इन भाषणों में प्रस्तुत विचार नागरिकों के लिए भविष्योन्मुखी चिंतन का आधार बनेगें।

यह प्रयास सरल भाषा में संविधान के मूल भाव व दर्शन को समझने का प्रयास मात्र है न कि वैधानिक प्रक्रियाओं और जरूरतों के प्रयोग के लिए। आशा है आपको ये प्रयास पसंद आयेगा।

अपने आसपास के लोगों में इसकी कुछ प्रतियां खरीदकर या छपवाकर वितरित करें, सामूहिक वाचन करें या अन्य तरीकों से आप हर हाथ में संविधान की इस मुहिम में शामिल हो सकते हैं।

प्रोफेसर सुभाष चंद्र

अध्यक्ष, हिंदी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

जनपथ बनो संविधान!

- कनक तिवारी

(1) भारत का संविधान प्राणवान दस्तावेज है। उसकी इबारत में देशभक्तों और बुद्धिजीवियों के दिलों धड़कनें हैं। इक्कीसवीं सदी के संविधान विरोधी माहौल में भी संविधान की ऋचाएं कुलबुला रही हैं। वे देश की हताशा के बावजूद मनुष्य की स्वतंत्रता की गरिमा गाती लगती हैं। संविधान ने ही सदियों पुराने इतिहास की कोख से फूटकर पहली बार राष्ट्रीय व्यवहार के मानक सिद्धान्त गढ़े हैं। वह इतिहास की बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में समीक्षा की जनवादी पद्धति का पहला सामूहिक प्रयोग हुआ। वह राजनीतिक दर्शन को हासिल कर लेने का सामूहिक संस्कार भी है। मूल अधिकार, नीति निदेशक तत्व और उद्देशिका संविधान के विचार का त्रिलोक हैं।

(2) संविधान ने ही हर भारतीय में आत्मविश्वास गूंथा है। अपनी किताबी चारदीवारी में अपनी व्याख्या के संसार को कैपसूल्स की तरह सहेजे हुए उसकी केन्द्रीय शक्ति 'भारत के हम लोग' हैं। व्यक्ति को जीवन की इकाई मानकर वह प्रत्येक भारतीय को अस्तित्व का अनंत आकाश सौंपता है। उसकी समझ का प्रस्थान बिन्दु उसकी उद्देशिका में है। संविधान मनुष्य के रूप में हर भारतीय और भारतीय के रूप में हर मनुष्य का गौरव गायन है। संविधान की पंथनिरपेक्ष, समाजवादी, लोकतांत्रिक, स्वधर्म की पोथी लेकिन जनता पढ़ कहां पाती है? यह अब तक राजपथ समझा गया है। दरअसल वह भारत की इक्कीसवीं सदी का जनपथ होता लग रहा है। उसे जनता के चरित्र के पसीने और खून से

जितना जितना सींचा जाता रहा है, उसमें पछुआ विचारों का अट्टहास लहलहाता भी रहा है।

(3) दुनिया के सबसे भारी भरकम संविधान में नब्बे हज़ार से अधिक शब्द हैं। यह संविधान न लचीला है, न सख़्त, न ही दोनों। हालांकि वह बोझिल दार्शनिक शब्दावली में लिखित है। संविधान एक साथ संघीय (फेडरल) और एकात्म (यूनिटरी) है। उसमें न्यायपालिका की श्रेष्ठता और विधायिका की सम्प्रभुता का समन्वयवादी घालमेल है। संसदीय और राष्ट्रपतीय प्रणालियों की बेमेल राजनीतिक विधाओं की वह असहज प्रयोगशाला भी है। भारत का संविधान दुनिया में शायद अकेला है, जो स्वदेशी भाषा की टकसाल में गढ़ा हुआ सिक्का नहीं है। भारत स्टर्लिंग पाउण्ड की भाषा का संविधान अपने जेहन में ठूंसे हुए है, जिसके अनुवाद का नाम रुपया है। हमारी संवैधानिक व्याख्याएं ब्रिटिश परम्पराओं की काठी पर चढ़ी हुई हैं। यह संविधान विश्व में सबसे ज्यादा वाचाल भी है। वह ऐसी सभा द्वारा रचा गया, जो गुलामी के दिन 9 दिसम्बर 1946 से एक सार्वभौम देश के लिए विधि (श्लेष!) का दस्तावेज रच रही थी। दूसरी ओर आजादी मिलने के बाद 15 अगस्त 1947 से पार्लियामेन्ट बनकर साथ साथ राजकाज भी चलाती रही! ऐसा अनोखा अनुभव संसार के किसी देश को नहीं है।

(4) 26 नवंबर 1949 को संविधान सभा ने भारत के आईन का अंतिम प्रारूप मंजूर किया। लगभग तीन साल लगातार चली संविधान सभा में तीन सौ के करीब स्वतंत्रता संग्राम सैनिकों, कानूनदां बुद्धिजीवियों, रियासती सामंतों के प्रतिनिधियों, राष्ट्रीय मुसलमानों और गांधीवादियों की मिली जुली दिमागी वर्जिश के कारण भारत के इतिहास का पहला शामिल शरीक लेखन महादेश के भविष्य की प्रज्ञापुस्तक बनकर आया। जवाहरलाल नेहरू ने संविधान के मकसद का स्वप्न परिच्छेद लिखा। आदर्शों, विचारों और सपनों को अमलीजामा पहनाने की प्रारूप समिति के अध्यक्ष बनकर डा. भीमराव अंबेडकर संविधान सभा में छा गए। परिगणित जाति के अंबेडकर और हिन्दू महासभा के डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के चुनाव में असफल हो जाने पर गांधी ने उन्हें नेहरू और पटेल के जरिए कांग्रेस के सहयोग से संविधान सभा में भिजवाया। अंबेडकर ने सहमति का माहौल तैयार किया और सभी विपरीत संशोधन प्रस्ताव वापस होते रहे। अंतिम भाषण में उन्होंने चेतावनी दी कि हमसे जैसा बना वैसा संविधान हम बना रहे हैं। इसके लालन पालन और विनाश की जिम्मेदारी उत्तराधिकारी सांसदों पर होगी। सभापति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने अफसोस जाहिर किया कि चपरासी तक की योग्यता हमने सुनिश्चित करने के प्रबंध किए हैं। जनप्रतिनिधियों की साक्षरता को लेकर संविधान निरीह और समर्थनकारी क्यों है?

(5) आईन के मूल कर्तव्य में देश में सामासिक संस्कृति को मजबूत करना हर नागरिक का कर्तव्य लिखा है। उस इबारत को आंख दिखाते एक धर्म, एक निशान, एक विधान की त्रैराशिक की गणित पढ़ाई जा रही है। संविधान किसी बूढ़े की तरह सलाह देता तो रहा कि देश के कुदरती संसाधनों पर पूरे समाज का अधिकार है। फिर भी अडानी, अंबानी, वेदांता, टाटा, मित्तल और न जाने कितनी व्यक्तिवाचक संज्ञाएं और विशेषण और नागरिक समाज का अर्थ नष्ट करती जा रही हैं। लगता है संविधान अब भी बुनियाद में मजबूत है। उसके इरादों में सैलाब है। उसके जेहन में वीतराग और तटस्थता के साथ चुनौती कबूल करने की जिजीविषा है।

(6) 26 जनवरी 1950 को भारत का संविधान लागू किया गया है। नया सवाल है वर्तमान डेमोक्रेसी और संविधान का अक्स भारतीयों की आत्मा में कब और कैसे पैठेगा? सामंतशाही चली गई। फिर भी छिपकली की कटी पूंछ तड़प रही है। उसका उत्तराधिकार आईएएस और आईपीएस की नौकरशाही ने ओढ़ लिया है। उनके तेवर, मुद्रा और तैश में फिरंगी अब भी गुर्राता है। संविधान हम भारत के लोगों ने लिखा है। फिर भी तीनों संवैधानिक संस्थाएं लंगड़ा कर चल रही हैं। लोग अदृश्य हैं, संदर्भ हैं, नेपथ्य में हैं, बराएनाम हैं, उपस्थित होकर भी दिखते नहीं हैं।

भारत आज दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र होकर अपनी सबसे कठिन और चुनौतीपूर्ण यात्रा में है। काश! यह बात उन लोगों के गले उतरती जिनके कंठ में संविधान का वाचन तो है, वचन में कर्म नहीं।

(7) 'देस हरियाणा' पत्रिका द्वारा आयोजित चौथे हरियाणा सृजन उत्सव का उद्घाटन भाषण देने के लिए जब कुरुक्षेत्र हिन्दी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर सुभाष चंद्र ने मुझे आमंत्रित किया, तो मुझे अचरज भी हुआ। उन्होंने स्पष्ट किया कि सभी रचनात्मक गतिविधियों और प्रक्रियाओं में संविधान का अक्स अब महसूस किया जाना है क्योंकि संविधान महज एक बौद्धिक वर्जिश की किताब नहीं है। उसका भारत के लोगों से उनके अस्तित्व का रिश्ता है। अपना वक्तव्य देते वक्त मुझे ख्याल आया कि संविधान की इबारत में हिन्दी भाषा में वह संदेश जनता तक नहीं पहुंचता जिसे हमारे स्वतंत्रता संग्राम सैनिकों और बुद्धिजीवियों ने संचित किया है। तब यह बात बनी कि संविधान की पोथी को सरल और सुगम भाषा में जनता के लिए मुहैया कराया जाए। तो वह न केवल जनमानस के लिए एक बेहतर खुराक होगी बल्कि संविधान के इतिहास के प्रति भी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

मुझे खुशी है प्रोफेसर सुभाषचंद्र ने यह अकादेमिक चुनौती गंभीर होकर स्वीकार की और आखिर वे इस योजना को अमल में लाने में सफल हो गए हैं। मुझे खासतौर पर

उदाहरण के लिए संविधान के अनुच्छेद 49 को पढ़कर बताना पड़ा था जिससे यह समझ आए कि संविधान की अंग्रेजी इबारतों का किस तरह मशीनी और तकनीकी अनुवाद तो हो गया है लेकिन वह देश की जनता तक अपने सही परिप्रेक्ष्य में कैसे पहुंच पाएगा।

49. Protection of monuments and places and objects of national importance-If shall be the obligation of the State to protect every monument or place or object of artistic or historical interest. [declared by or under law made by Parliament] to be of national importance, from spoliation, disfigurement, destruction, removal, disposal or export, as the case may be.

49. राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण-{संसद द्वारा बनाई गई विधि द्वारा या उसके अधीन राष्ट्रीय महत्व वाले घोषित किए गए कलात्मक या ऐतिहासिक अभिरुचि वाले प्रत्येक संस्मारक या स्थान या वस्तु का, यथास्थिति, लुंठन, विरूपण, विनाश, अपसारण, व्ययन या निर्यात से संरक्षण करना राज्य की बाध्यता होगी।

यह महत्वपूर्ण है कि संविधान के भाग 1 से भाग 4-क तक उसका दर्शन निहित और मुखर है। उसके बाद संविधान के बाकी अनुच्छेद प्रक्रिया और उससे उपजती तमाम विसंगतियों और व्याख्याओं को लेकर विस्तारित हैं।

इसलिए प्रोफेसर सुभाषचंद्र के साथ बैठकर यह तय हुआ कि पहले संविधान के अनुच्छेद 51-क तक की सरल और सुपाच्य हिन्दी में पाठकों के लिए संविधान को परोसा जाए। जरूरत होने पर फिर आगे भी उसे ऐसी ही सुगम हिन्दी में लिखा जा सकेगा। संविधान भारत की जनता के लिए दिन प्रतिदिन के आचरण का इंडेक्स, आईना और थर्मामीटर हो। वह सभी राष्ट्रीय गतिविधियों का संचालक और समीक्षक बने। तब ही तो उसके लिखे जाने की उपादेयता सिद्ध हो जाती है।

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों कोः

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय;
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता;
प्रतिष्ठा और अवसर की समता;
प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में
व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए;

दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

भाग -1
संघ और उसका राज्यक्षेत्र

1. संघ का नाम और राज्यक्षेत्र

(1)इंडिया अर्थात जो भारत है, राज्यों का संघ होगा।

(2)राज्य और उनके क्षेत्र वे होंगे जो पहली अनुसूची में दर्ज हैं।

(3)भारत के राज्य क्षेत्र में शामिल होंगे-

(क) राज्यों (प्रदेश) के क्षेत्र

(ख) पहली अनुसूची में लिखे हुए संघ राज्यक्षेत्र, (union territory) और

(ग) ऐसे अन्य राज्य क्षेत्र जो अर्जित (अधिग्रहण) किए जाएं।

2. नए राज्यों का प्रवेश या स्थापना -

संसद कानून बनाकर, उन नियमों और शर्तों पर जिन्हें वह ठीक समझे, भारत संघ में नए राज्यों की स्थापना या प्रवेश कर सकेगी।

3. नए राज्य बनाना और मौजूदा राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों में बदलाव

संसद, कानून बनाकर

(क) किसी राज्य में से उसका क्षेत्र अलग करके अथवा दो या अधिक राज्यों या राज्यों के भागों को मिलाकर अथवा किसी क्षेत्र को किसी राज्य के किसी भाग के साथ मिलाकर नए राज्य का निर्माण कर सकेगी,

(ख) किसी राज्य का क्षेत्र बढ़ा सकेगी,

(ग) किसी राज्य का क्षेत्र घटा सकेगी,

(घ) किसी राज्य की सीमाओं में बदलाव कर सकेगी,

(ड.) किसी राज्य के नाम में बदलाव कर सकेगी,

परंतु इस मकसद के लिए संसद के किसी भी सदन में राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना कोई विधेयक पेश नहीं किया जा सकता और जहां विधेयक की प्रस्थापना में जिन राज्यों के क्षेत्र, सीमा या नाम प्रभावित होंगे, राष्ट्रपति द्वारा उन राज्यों के विधान मंडल से तत्संबंधी अपने विचार प्रकट करने की तय की गई समय अवधि या राष्ट्रपति द्वारा दी गई अतिरिक्त समय अवधि समाप्त नहीं हो गई हो, संसद के किसी सदन में दुबारा स्थापित नहीं किया जाएगा।

स्पष्टीकरण 1: इस अनुच्छेद के खंड (क) से खंड (ड.) में 'राज्य' के तहत संघ राज्यक्षेत्र (union territory) है, लेकिन परन्तुक में 'राज्य' के अंतर्गत 'संघ राज्यक्षेत्र' नहीं है।

स्पष्टीकरण 2: खंड (क) द्वारा संसद को दी गई शक्ति के तहत किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के किसी भाग को किसी अन्य राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के साथ मिलाकर नए राज्य या संघ राज्यक्षेत्र का निर्माण करना है।

4. पहली अनुसूची और चौथी अनुसूची के संशोधन तथा अनुपूरक, (supplementary) आनुषंगिक (incidental) और पारिणामिक (consequential) विषयों का प्रावधान करने के लिए अनुच्छेद 2 और अनुच्छेद 3 के तहत बनाए गए कानून -

(1) अनुच्छेद 2 या अनुच्छेद 3 में निर्देश (जिक्र) किए गए किसी कानून में पहली अनुसूची और चौथी अनुसूची के संशोधन के लिए ऐसे प्रावधान शामिल होंगे जो उस कानून के प्रावधानों को प्रभावी करने के लिए आवश्यक हों तथा ऐसे अनुपूरक, आनुषंगिक और पारिणामिक प्रावधान भी (ऐसे कानून से संसद में, राज्यों के विधान-मंडल या विधान-मंडलों में या प्रभावित राज्य के प्रतिनिधित्व संबंधी प्रावधानों समेत) शामिल हो सकेंगे जिन्हें संसद आवश्यक समझे।

(2) ऊपर लिखे प्रकार का कोई कानून अनुच्छेद 368 के प्रयोजन के लिए इस संविधान का संशोधन नहीं समझा जाएगा।

भाग- 2 नागरिकता

5. संविधान की शुरुआत पर नागरिकता

इस संविधान की शुरुआत पर हर व्यक्ति जिसका भारत के राज्यक्षेत्र में अधिवास (domicile) है और-

(क) जो भारत के राज्यक्षेत्र में जन्मा था, या

(ख) जिसके माता पिता या पिता में से कोई एक भारत के राज्यक्षेत्र में जन्मा था या

(ग) जो संविधान के लागू होने की ऐसी शुरुआत से ठीक पहले कम से कम पांच वर्ष तक भारत के राज्यक्षेत्र में साधारणतया निवासी रहा है, भारत का नागरिक होगा।

6. पाकिस्तान से भारत में देशान्तरण करने वाले कुछ व्यक्तियों की नागरिकता के अधिकार

अनुच्छेद 5 में किसी बात के होते हुए भी, कोई व्यक्ति जिसने ऐसे राज्यक्षेत्र से जो इस समय पाकिस्तान की सीमा में शामिल है, भारत के राज्यक्षेत्र में देशान्तरण किया है, इस संविधान की शुरुआत पर भारत का नागरिक समझा जाएगा-

यदि वह अथवा उसके माता या पिता या अथवा दादा या दादी अथवा नाना या नानी में से कोई भारत शासन अधिनियम, 1935 (मूल रूप में जैसा अधिनियमित था) में परिभाषित भारत में जन्मा था, और

(ख) (i) ऐसा व्यक्ति जिसने 19 जुलाई, 1948 से पहले इस प्रकार देशान्तरण किया है, यदि वह अपने देशान्तरण की तारीख से भारत के राज्यक्षेत्र में साधारण तौर से निवासी रहा है, या

(ii) ऐसा व्यक्ति जिसने 19 जुलाई, 1948 को या उसके बाद इस प्रकार देशान्तरण किया है, उसने भारत की (तत्कालीन) डोमिनियम सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी को नागरिकता पाने के लिए आवेदन किए जाने पर उस अधिकारी द्वारा सरकार

द्वारा निर्धारित प्रारूप में और रीति से संविधान की शुरुआत से पहले भारत का नागरिक पंजीकृत कर लिया गया हैः

लेकिन यदि कोई व्यक्ति अपने आवेदन की तारीख से ठीक पहले कम से कम छह महीने भारत के राज्यक्षेत्र में निवासी नहीं रहा हो तो उसे इस प्रकार पंजीकृत नहीं किया जाएगा।

7. पाकिस्तान को प्रव्रजन (देशांतरित) करने वाले कुछ व्यक्तियों के नागरिकता के अधिकार

कोई व्यक्ति जिसने 1 मार्च 1947 के बाद भारत के राज्यक्षेत्र से इस समय पाकिस्तान के अंतर्गत आने वाले राज्यक्षेत्र में देशान्तरण किया है, अनुच्छेद 5 और अनुच्छेद 6 में किसी बात के होते हुए भी उसे भारत का नागरिक नहीं समझा जाएगाः लेकिन इस अनुच्छेद की कोई बात ऐसे व्यक्ति पर लागू नहीं होगी जो इस समय पाकिस्तान के अंतर्गत आने वाले राज्यक्षेत्र में देशान्तरण करने के बाद भारत के राज्यक्षेत्र में पुनर्वास या स्थायी रूप से रहने के लिए किसी कानून की अनुज्ञा (परमिट) के तहत लौट आया है जो उसे कानून के प्राधिकार के तहत दी गई है, और हर ऐसे व्यक्ति के बारे में अनुच्छेद 6 के खंड (ख) के अनुसार यह समझा जाएगा कि उसने भारत के राज्यक्षेत्र में 19 जुलाई 1948 के बाद देशान्तरण किया है।

8. भारत के बाहर रहने वाले भारतीय मूल के कुछ व्यक्तियों के नागरिकता के अधिकार -

अनुच्छेद 5 में किसी बात के होते हुए भी, कोई व्यक्ति या जिसके माता या पिता में से कोई एक अथवा दादा या दादी अथवा नाना या नानी में से कोई एक भारत शासन अधिनियम, 1935 (मूल रूप में यथा अधिनियमित) में परिभाषित भारत में जन्मा था और जो इस प्रकार परिभाषित भारत से बाहर किसी देश में साधारणतया रह रहा है, भारत का नागरिक समझा जाएगा, बशर्ते वह भारत डोमिनियम की सरकार द्वारा या भारत सरकार द्वारा नागरिकता पाने के लिए निर्धारित प्रारूप में और रीति से उस देश में जहां वह उस समय निवास कर रहा है, भारत के राजनयिक या कोंसुलर प्रतिनिधि को आवेदन किए जाने पर इस संविधान के प्रारंभ से पहले या उसके बाद राजनयिक या कोंसुलर प्रतिनिधि द्वारा भारत का नागरिक पंजीकृत कर लिया गया है।

9. स्वेच्छा से विदेशी राज्य की नागरिकता अर्जित करने वाले व्यक्तियों का नागरिक न होना -

यदि किसी व्यक्ति ने स्वेछा से किसी विदेशी राज्य की नागरिकता हासिल कर ली है तो वह अनुच्छेद 5 के आधार पर भारत का नागरिक नहीं होगा अथवा अनुच्छेद 6 या अनुच्छेद 8 के आधार पर भारत का नागरिक नहीं समझा जाएगा।

10. नागरिकता के अधिकारों का बना रहना-

प्रत्येक व्यक्ति जो इस भाग के ऊपर लिखे प्रावधानों में से किसी के तहत भारत का नागरिक है या समझा जाता है, संसद द्वारा जो कानून बनाए जाएं उनके प्रावधानों के तहत भारत का नागरिक बना रहेगा।

11. नागरिकता के अधिकार का कानून संसद द्वारा विनियमन किया जाना -

नागरिकता की प्राप्ति और समाप्ति तथा नागरिकता से संबंधित अन्य समस्त विषयों के संबंध में इस भाग के ऊपर लिखे प्रावधानों की कोई बात संसद के प्रावधान बनाने की शक्तियों को नहीं घटाएगी।

भाग-3
मूल अधिकार

12. परिभाषा - यदि प्रसंगवश कोई दूसरा अर्थ को लागू नहीं होना हो, तो इस भाग में राज्य के तहत भारत सरकार और संसद तथा प्रत्येक राज्य की सरकार और विधान मंडल तथा सभी स्थानीय और अन्य प्राधिकारी शामिल हैं जो भारत राज्यक्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण में हैं।

13. मूल अधिकारों से असंगत या उनको अल्पीकरण (कमी) करने वाले कानून-

(1) इस संविधान के प्रारंभ होने से ठीक पहले भारत राज्यक्षेत्र में लागू सभी कानून उस मात्रा (सीमा) तक शून्य होंगे जिस मात्रा में वे इस भाग के प्रावधानों से असंगत हैं।

(2) राज्य ऐसे कोई कानून नहीं बनाएगा जो इस भाग में दिए गए अधिकारों को छीनते हैं या कमतर करते हैं और इस खंड के उल्लंघन में बनाया गया प्रत्येक कानून उल्लंघन करने की सीमा (हद) तक प्रभावशून्य होगा।

(3) यदि जब तक कि सन्दर्भ से अन्य अर्थ अपेक्षित न हो, तो इस अनुच्छेद में

(क) 'कानून की परिभाषा के तहत भारत राज्यक्षेत्र में कानून का प्रभाव रखने वाला कोई अध्यादेश, आदेश, उप-कानून, नियम, विनियम, अधिसूचना, रूढ़ि या प्रथा है।

(ख) इस संविधान के प्रारंभ से पहले भारत राज्यक्षेत्र में किसी विधान मंडल या अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित या निर्मित कानून जो पहले ही निरस्त न हो गया हो, चाहे ऐसे कानून या उसका कोई भाग उस समय पूर्णतया या विशेष क्षेत्रों में लागू न हो, 'प्रचलित कानून' की परिभाषा के अंतर्गत होंगे।

(4) इस अनुच्छेद की कोई बात अनुच्छेद 368 के अधीन किए गए इस संविधान के किसी संशोधन को लागू नहीं होगी।

समता का अधिकार

14. कानून के समक्ष समता-

राज्य भारत राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता या कानून के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।

15. धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव की मनाही

(1) राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध के केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा।

(2) केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म-स्थान या इनमें से किसी के आधार पर नागरिक से निम्नलिखित स्थितियों में भेदभाव नहीं किया जाएगा-

(क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश के संबंध में

(ख) पूर्ण या आंशिक रूप से राज्य-निधि से पोषित या साधारण जनता के उपयोग के लिए बनाए गए कुओं, तालाबों, स्नानघाटों, सड़कों और सार्वजनिक समागम (सैरगाह) (Resort) के स्थानों के उपयोग के बारे में किसी भी निर्योग्यता, (असमर्थता) दायित्व, प्रतिबन्ध या शर्त के अधीन नहीं होगा।

(3) इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिए कोई विशेष प्रावधान बनाने से प्रतिबन्धित नहीं करेगी।

(4) इस अनुच्छेद की या अनुच्छेद 29 के खंड (2) की किसी बात से राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए किन्हीं नागरिक वर्गों की उन्नति या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनतजातियों के लिए कोई विशेष प्रावधान करने में बाधा नहीं होगी।

{(5) इस अनुच्छेद या अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) के उपखण्ड (छ) की कोई बात राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के लिए, विधि द्वारा, कोई विशेष उपबन्ध करने से निवारित नहीं करेंगी, जहां तक ऐसे विशेष उपबंध, अनुच्छेद 30

के खण्ड (1) में निर्दिष्ट अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थाओं से भिन्न, शिक्षा संस्थाओं में, जिनके अन्तर्गत प्राइवेट शिक्षा संस्थाएं भी हैं, चाहे वे राज्य से सहायता प्राप्त हों या नहीं, प्रवेश से सम्बन्धित हैं।}

{(6) इस अनुच्छेद या अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) के उपखण्ड (छ) या अनुच्छेद 29 के खण्ड (2) की कोई बात, राज्य को-

(क) खण्ड (4) और खण्ड (5) में उल्लिखित वर्गों से भिन्न नागरिकों के आर्थिक रूप से दुर्बल किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिए कोई भी विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी; और

(ख) खण्ड (4) और खण्ड (5) में उल्लिखित वर्गों से भिन्न नागरिकों के आर्थिक रूप से दुर्बल किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिए कोई भी विशेष उपबंध करने से वहां निवारित नहीं करेगी, जहां तक ऐसे उपबंध, ऐसी शैक्षणिक संस्थाओं में, जिसके अन्तर्गत अनुच्छेद 30 के खण्ड (1) में निर्दिष्ट अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं से भिन्न प्राइवेट शैक्षणिक संस्थाएं भी हैं, चाहे वे राज्य द्वारा सहायता पाने वाली हैं या सहायता न पाने वाली हैं, प्रवेश से संबंधित हैं, जो आरक्षण की दशा में विद्यमान आरक्षण के अतिरिक्त तथा प्रत्येक प्रवर्ग में कुल स्थानों के अधिकतम दस प्रतिशत के अध्यधीन होगा।

स्पष्टीकरण - इस अनुच्छेद और अनुच्छेद 16 के प्रयोजनों के लिए ''आर्थिक रूप से दुर्बल वर्ग'' वे होंगे जो राज्य द्वारा कुटुम्ब की आय और आर्थिक अलाभ के अन्य सूचकों के आधार पर समय-समय पर अधिसूचित किए जाएं।}

16.सार्वजनिक नियोजन के विषय में अवसर की समानता-

(1) राज्य के अधीन सरकारी पदों पर नियुक्ति के संबंध में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समानता होगी।

(2) राज्य के अधीन किसी नौकरी या पद के विषय में कोई नागरिक केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, कुल, जन्मस्थान, निवास या इनमें से किसी के आधार पर अपात्र नहीं होगा और न उससे भेदभाव किया जाएगा।

(3) इस अनुच्छेद की किसी बात से संसद को कोई ऐसा कानून बनाने में बाधा नहीं होगी जो किसी राज्य या राज्यक्षेत्र में किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन किसी प्रकार की नौकरी में या पद पर नियुक्ति के विषय में वैसी नौकरी या नियुक्ति से पहले उस राज्य या राज्यक्षेत्र में निवास विषयक कोई अपेक्षा करती हो।

(4) इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के आरक्षण के लिए प्रावधान करने में कोई बाधा नहीं होगी।

(4 क) इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के पक्ष में जिनका प्रतिनिधित्व राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है। राज्य के अधीन सेवाओं में किसी वर्ग या वर्गों के पदों पर पारिणामिक वरिष्ठता सहित पदोन्नति के मामलों में आरक्षण के लिए प्रावधान करने में कोई बाधा नहीं होगी।

(4ख) इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को किसी वर्ग में किन्हीं न भरी गई रिक्तियों को, जो खंड (4) या खंड (4 क) के अधीन किए गए आरक्षण के लिए किसी प्रावधान के अनुसार उस वर्ष में भरी जाने के लिए आरक्षित हैं, किसी बाद के वर्ष या वर्षों में भरे जाने के लिए अलग वर्ग की रिक्तियों के रूप में विचार करने में कोई बाधा नहीं होगी और ऐसे वर्ग की रिक्तियों पर उस वर्ष की रिक्तियों के साथ जिसमें वे भरी जा रही हैं, उस वर्ष की रिक्तियों की कुल संख्या के संबंध में पचास प्रतिशत आरक्षण की अधिकतम सीमा की बंदिश पर विचार करने के लिए नहीं किया जाएगा।

(5) इस अनुच्छेद की कोई बात किसी ऐसे कानून के लागू होने के लिए प्रभाव नहीं डालेगी जो यह प्रावधान करता है कि किसी धार्मिक या विशेष संप्रदाय से संबंधित संस्था के कार्यकलाप से जुड़ा कोई पदधारी या उसके निकाय (संचालक मंडल) का कोई सदस्य किसी विशिष्ट धर्म का मानने वाला या विशिष्ट संप्रदाय का ही हो।

(6) {(6) इस अनुच्छेद की कोई बात, राज्य को खंड (4) में उल्लिखित वर्गों से भिन्न नागरिकों के आर्थिक रूप से दुर्बल किन्हीं वर्गों के पक्ष में नियुक्तियों या पदों के विद्यमान आरक्षण के अतिरिक्त तथा प्रत्येक प्रवर्ग में पदों के अधिकतम दस प्रतिशत के अध्यधीन आरक्षण के लिए कोई भी उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।}

17. अस्पृश्यता का अंत

अस्पृश्यता (छुआछूत) का अंत किया जाता है और किसी भी रूप में उसका आचरण निषिद्ध है। अस्पृश्यता से उपजी किसी निर्योग्यता (असमर्थता) को लागू करना अपराध होगा जो कानून के अनुसार दंडनीय होगा।

18. उपाधियों का अंत

(1) सेना या विद्वतापूर्ण (अकादेमिक) प्रावीण्य सम्मान के सिवाय अन्य कोई उपाधि राज्य के द्वारा प्रदान नहीं की जाएगी।

(2) भारत का कोई नागरिक किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि स्वीकार नहीं करेगा।

(3) कोई व्यक्ति जो भारत का नागरिक नहीं है, राज्य के अधीन लाभ या विश्वास के किसी पद को धारण करते हुए राष्ट्रपति की सहमति के बिना किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि स्वीकार नहीं करेगा।

(4) राज्य के अधीन लाभ या विश्वास के किसी पद पर कार्यरत कोई व्यक्ति किसी विदेशी राज्य से राष्ट्रपति की सहमति के बिना किसी रूप में कोई भेंट उपलब्धि (आय) या पद स्वीकार नहीं करेगा।

स्वतंत्रता का अधिकार

19. वाक् की स्वतंत्रता आदि सम्बन्धित कुछ अधिकारों का संरक्षण

(1) सभी नागरिकों को-

(क) बोलने और अभिव्यक्ति की आजादी का,

(ख) शांतिपूर्वक और बिना हथियार सभा सम्मेलन का,

(ग) एसोसियेशन या यूनियन या सहकारी समिति बनाने का

(घ) भारत के पूरे राज्यक्षेत्र की सीमा में बिना रोक टोक आने जाने का,

(ड.) भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का,

(छ) कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या करोबार करने का, अधिकार होगा।

(2) खंड (1) के उपखंड (क) में दिए गए अधिकार के उपयोग से राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ दोस्ताना संबंधों, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या सदाचार, अदालतों की अवमानना, मानहानि, अपराध के लिए प्रोत्साहन तथा भारत की संप्रभुता और अखंडता के संबंध में विवेकपूर्ण प्रतिबंध जहां तक कोई मौजूदा कानून लागू करता है, वहां तक उसके लागू होने पर प्रभाव नहीं डालेगी या वैसे प्रतिबंध लागू करने वाला कोई कानून बनाने से राज्य को नहीं रोकेगी।

(3) उक्त खंड के उपखंड (ख) की कोई बात उक्त उपखंड द्वारा दिए गए अधिकार के प्रयोग पर (भारत की प्रभुता और अखंडता या) लोक व्यवस्था या सदाचार के हितों में

विवेकपूर्ण प्रतिबंध जहां तक कोई मौजूदा कानून लागू करता है वहां तक उसके लागू होने पर प्रभाव नहीं डालेगी या वैसे प्रतिबंध लागू करने वाला कोई कानून बनाने से राज्य को नहीं रोकेगी।

(4) उक्त खंड के उपखंड (ग) की कोई बात उसी उपखंड द्वारा दिए गए अधिकार के प्रयोग पर (भारत की प्रभुता और अखंडता या) लोक व्यवस्था या सदाचार के हितों में (विवेकपूर्ण) युक्तियुक्त प्रतिबंध जहां तक कोई मौजूदा कानून लागू करता है वहां तक उसके लागू होने पर प्रभाव नहीं डालेगी या वैसे प्रतिबंध लागू करने वाला कोई कानून बनाने से राज्य को रोकेगी नहीं। (बाधा नहीं डालेगी।)

(5) उक्त खंड के (उपखंड घ) और उपखंड (ङ) की कोई बात उन्हीं उपखंडों द्वारा दिए गए अधिकारों के प्रयोग पर साधारण जनता के हितों में या किसी अनुसूचित जनजाति के हितों के संरक्षण के लिए विवेकपूर्ण प्रतिबंध जहां तक कोई मौजूदा कानून लागू करता है वहां तक उसके संचालन पर प्रभाव नहीं डालेगी या वैसे प्रतिबंध लागू करने वाला कोई कानून बनाने से राज्य को रोकेगी नहीं।

(6) उक्त खंड के उपखंड (छ) की कोई बात उस उपखंड द्वारा दिए गए अधिकार के प्रयोग पर साधारण जनता के हितों में विवेकपूर्ण प्रतिबन्ध जहां तक कोई मौजूदा कानून लागू करता है वहां तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या वैसे प्रतिबंध अधिरोपित करने वाला कोई कानून बनाने से राज्य को निवारित नहीं करेगी और विशिष्टतया (उक्त उपखंड की कोई बात-

(i) कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने के लिए आवश्यक वृत्तिक या तकनीकी योग्यताओं से, या

(ii) राज्य द्वारा या राज्य के स्वामित्व या नियंत्रण में किसी निगम द्वारा कोई व्यापार, कारोबार, उद्योग या सेवा, नागरिकों का पूर्णतः या आंशिक रूप से अलग करके या अन्यथा, चलाए जाने से, जहां तक कोई मौजूदा कानून संबंध रखता है, वहां तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगा या इस प्रकार संबंध रखने वाला कोई कानून बनाने से राज्य को निवारित नहीं करेगा।)

20. अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण

(1) कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिए तब तक दोषी नहीं ठहराया जाएगा, जब तक कि उसने अपराध के रूप में आरोपित कार्य करने के समय किसी प्रचलित कानून का

उल्लंघन नहीं किया है। या वह उससे अधिक सजा का भागी नहीं होगा जो उस अपराध के किए जाने के समय लागू कानून के अधीन दी जा सकती थी।

(2) किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक अभियोजित (prosecuted) और दंडित नहीं किया जाएगा।

(3) किसी अपराध के लिए आरोपी किसी व्यक्ति को अपने खुद के खिलाफ गवाही देने के लिए मजबूर नहीं किया जाएगा।

21.प्राण और दैहिक आजादी का संरक्षण

किसी व्यक्ति को उसके प्राण या वैयक्तिक (निजी) स्वतंत्रता से कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित (महरूम) किया जाएगा, अन्यथा नहीं।

21 क. शिक्षा का अधिकार - राज्य, 6 वर्ष से 14 वर्ष तक की आयु वाले बालकों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा मुहैया करा देने के लिए राज्य के कानूनों द्वारा उपबंधित प्रक्रिया के अनुसार करेगा।

22. कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण

(1) गिरफ्तार किए गए किसी व्यक्ति को गिरफ्तारी के कारणों से यथाशीघ्र अवगत कराए बिना हवालात में नहीं रखा जाएगा और उसे अपनी पसंद के वकील से सलाह करने और बचाव कराने के अधिकार से वंचित नहीं किया जाएगा।

(2) प्रत्येक व्यक्ति जिसे बंदी बनाकर हवालात में रखा गया है, उसे बंदीकरण के स्थान से मजिस्ट्रेट की अदालत तक पहुंचने के लिए जरूरी समय को छोड़कर चौबीस घंटे की अवधि में सबसे नजदीक के मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जाएगा। मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना उक्त अवधि से अधिक समय तक किसी को हवालात में नहीं रखा जाएगा।

(3) खंड (1) और खंड (2) की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति पर लागू नहीं होगी जो-

(क) जो उस समय विदेशी शत्रु है, या

(ख) जो व्यक्ति किसी निवारक नजरबन्दी अधिनियम के तहत बंदी बनाया गया हो।

(4) किसी कानून के प्रावधान के तहत किसी व्यक्ति को तब तक तीन महीने से अधिक की अवधि के लिए हवालात में नहीं रखा जा सकता जब तक कि -

(क) उच्च न्यायालय के वर्तमान या भूतपूर्व जज या जज के तौर पर नियुक्ति के योग्य व्यक्तियों के सलाहाकर मंडल ने उक्त तीन महीने के समय की समाप्ति से पहले यह रिपोर्ट नहीं दी है कि उनकी राय में ऐसे बंदी के निरोध के पर्याप्त कारण हैं,

लेकिन इस उपखंड की कोई बात किसी व्यक्ति को या उस अधिकतम अवधि से अधिक अवधि के लिए नजरबन्द किया जाना अधिकृत नहीं करेगी जो खंड (7) के उपखंड (ख) के अधीन संसद द्वारा बनाए गए कानून द्वारा निर्धारित की गई है, या

(ख) ऐसे व्यक्ति को खंड (7) के उपखंड (क) और उपखंड (ख) के अधीन संसद द्वारा बनाए गए कानून के प्रावधानों के अनुसार निरुद्ध नहीं किया जाता है।

(5) निवारक नजरबन्दी कानून के तहत जब किसी व्यक्ति को नजरबन्द किया जाता है तब आदेश करने वाला प्राधिकारी जल्द से जल्द उस व्यक्ति को यह संसूचित करेगा कि वह आदेश किन आधारों पर किया गया है और उस आदेश के विरुद्ध आवेदन करने के लिए उसे शीघ्रातिशीघ्र अवसर देगा।

(6) उपबंध (5) में किसी विषय पर ऐसा आदेश देने वाले प्राधिकारी के लिए ऐसे तथ्यों को प्रकट करना आवश्यक नहीं होगा जिन्हें प्रकट करना वह जनहित के विरुद्ध समझता है।

(7) संसद कानून द्वारा निर्धारित कर सकेगी कि

(क) किन परिस्थितियों में और किस वर्ग या वर्गों के मामलों में किसी व्यक्ति को निवारक निरोध कानून के तहत तीन मास से अधिक अवधि के लिए उपबंध (4) के उपबंध (क) के प्रावधानों के अनुसार सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त किए बिना निरुद्ध किया जा सकेगा,

(ख) किसी वर्ग या वर्गों के मामलों में कितनी अधिकतम अवधि के लिए किसी व्यक्ति को निवारक निरोध कानून के तहत निरुद्ध किया जा सकेगा, और

(ग) उपबंध (4) के उपबंध (क) के अधीन की जाने वाली जांच में सलाहकार बोर्ड द्वारा किस प्रक्रिया को अपनाया जाए।

शोषण के विरुद्ध अधिकार

23. मनुष्य के अवैध व्यापार और जबरिया श्रम पर रोक

(1) मानव तस्करी और बेगार तथा इसी प्रकार के अन्य बलपूर्वक श्रम पर रोक है और इस प्रावधान का कोई भी उल्लंघन करना कानून के अनुसार दंडनीय अपराध होगा।

(2) इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को सार्वजनिक मकसदों के लिए सेवा अनिवार्य घोषित कराने में बाधा नहीं होगी और ऐसी सेवा अनिवार्य घोषित कराने में राज्य केवल धर्म, मूलवंश, जाति या वर्ग या इनमें से किसी के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा।

24.कारखानों आदि में बालकों के काम पर रोक-

14 वर्ष से कम आयु के किसी बालक को किसी कारखाने या खदान में या किसी अन्य जोखिमपूर्ण काम में नहीं लगाया जाएगा।

धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार

5. अंतःकरण की और बिना किसी रोक टोक के धर्म को मानने, आचरण करने और प्रचार करने की स्वतंत्रता

(1) लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के अन्य प्रावधानों के लिए सभी व्यक्तियों को अंतःकरण की स्वतंत्रता और बिना किसी रोक टोक के धर्म को मानने, आचरण करने और प्रचार करने की स्वतंत्रता का अधिकार समान रूप से होगा।

(2) इस अनुच्छेद की कोई बात किसी ऐसे मौजूदा कानून के लागू रहने पर प्रभाव नहीं डालेगी या राज्य को कोई ऐसा कानून बनाने से नहीं रोकेगी जो-

(क) धार्मिक आचरण से संबद्ध किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनीतिक या अन्य (सेक्युलर) गतिविधि का नियमन या प्रतिबंधन करती है,

(ख) सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए या सार्वजनिक स्वरूप की हिंदू धार्मिक संस्थाओं में हिंदुओं के सभी वर्गों और उपवर्गों के लिए खोलने का प्रावधान करती है।

स्पष्टीकरण 1- कृपाण धारण करना और लेकर चलना सिक्ख धर्म को मानने का अंग समझा जाएगा।

स्पष्टीकरण 2- उपबंध (2) के उपबंध (ख) में हिंदुओं के प्रति निर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि उसके अंतर्गत सिक्ख, जैन या बौद्ध धर्म के मानने वाले व्यक्तियों के प्रति निर्देश है और हिंदुओं की धार्मिक संस्थाओं के प्रति निर्देश का अर्थ तदनुसार लगाया जाएगा।

26. धार्मिक कार्यों के प्रबंधन की स्वतंत्रता

लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए, प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी अनुभाग (वर्ग) को अधिकार होगा -

(क) धार्मिक और धर्मार्थ प्रयोजनों के लिए संस्थाओं का निर्माण और रख रखाव का,

(ख) अपने धर्म विषयक कार्यों का प्रबंधन करने का,

(ग) चल और अचल संपत्ति के ग्रहण और स्वामित्व का, और

(घ) ऐसी संपत्ति का कानून के अनुसार संचालन करने का।

27. किसी विशिष्ट धर्म की तरक्की के लिए करों के भुगतान की स्वतंत्रता

किसी भी व्यक्ति को ऐसे किसी तरह के करों का भुगतान करने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा जो किसी विशिष्ट धर्म या धार्मिक संप्रदाय की तरक्की या रखरखाव में खर्च करने के लिए एकत्रित किये जाते हैं।

28. कुछ शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के बारे में

(1) राज्य-निधि से पूर्णतः पोषित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी।

(2) खंड (1) की कोई बात ऐसी शिक्षा संस्था पर लागू नहीं होगी जिसका प्रशासन राज्य करता है लेकिन जो किसी ऐसे विन्यास या न्यास के अधीन स्थापित हुई है जिसके अनुसार उस संस्था में धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक है।

(3) किसी भी व्यक्ति को राज्य से मान्यता प्राप्त या राज्य-निधि से सहायता प्राप्त शिक्षण संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा या ऐसी संस्था से संलग्न किसी स्थान में की जाने वाली धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा जब तक कि उस व्यक्ति ने या यदि वह अवयस्क है तो उसके अभिभावक ने इसके लिए अपनी सहमति नहीं दी है।

संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार

29. अल्पसंख्यक-वर्गों के हितों का संरक्षण

(1) भारत के राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाग (वर्ग) को जिसकी अपनी विशिष्ट भाषा, लिपि या संस्कृति है, को संरक्षित रखने का अधिकार होगा।

(2) राज्य द्वारा पोषित या राज्य-निधि से सहायता प्राप्त किसी शिक्षा संस्था में किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इनमें से किसी के आधार पर प्रवेश लेने से वंचित नहीं किया जाएगा।

30. शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक-वर्गों का अधिकार

(1) धर्म या भाषायी सभी अल्पसंख्यक-वर्गों को अपनी इच्छानुसार शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करने और चलाने का अधिकार होगा।

(1क) खंड (1) में जिक्र किए गए किसी अल्पसंख्यक-वर्ग द्वारा स्थापित और प्रशासित शिक्षा संस्था की संपत्ति के अनिवार्य अधिग्रहण के लिए प्रावधान वाले कानून बनाते समय राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि ऐसी संपत्ति के अधिग्रहण के लिए ऐसे कानून द्वारा या उसके अधीन निर्धारित रकम इतनी हो कि उस खंड के तहत दिए गए अधिकार प्रतिबंधित या निरस्त नहीं हो जाएं।

(2) शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी शिक्षा संस्था के साथ इस आधार पर विभेद नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक-वर्ग के प्रबंध में है।

(कुछ कानूनों का बचाव)

31क. संपदाओं आदि के अर्जन के लिए प्रावधान करने वाले कानूनों का बचाव-

(1) अनुच्छेद 13 में शामिल किसी बात के होते हुए भी,-

(क) किसी संपदा के या उसमें किन्हीं अधिकारों के राज्य द्वारा अधिग्रहण करने के लिए या किन्हीं ऐसे अधिकारों को समाप्त (extinguish) करने या उनमें बदलाव लाने के लिए, या

(ख) किसी संपत्ति का प्रबंध लोकहित में या उस संपत्ति का मुनासिब प्रबंध सुनिश्चित करने के मकसद से सीमित अवधि के लिए राज्य द्वारा ले लिए जाने के लिए, या

(ग) दो या अधिक निगमों को लोकहित में या उन निगमों में से किसी का उचित प्रबंध सुनिश्चित करने के मकसद से मिलाने के लिए, या

(घ) निगमों के प्रबंध अभिकर्ताओं, सचिवों और कोषाध्यक्षों, प्रबंध निदेशकों, निदेशकों या प्रबंधकों के किन्हीं अधिकारों या उनके शेयरधारकों के वोट देने के किन्हीं अधिकारों की समाप्ति या उनमें परिवर्तन के लिए, या

(ङ) किसी खनिज या खनिज तेल की खोज करने या उसे प्राप्त करने के मकसद के लिए किसी करार, पट्टे या अनुज्ञप्ति के आधार पर उत्पन्न होने वाले किन्हीं अधिकारों की समाप्ति या उनमें बदलाव करने के लिए या किसी ऐसे करार, पट्टे या अनुज्ञप्ति को समय से पहले समाप्त करने या रद्द करने के लिए, प्रावधान करने वाला कानून इस आधार पर शून्य नहीं समझा जाएगा कि वह अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 19 द्वारा दिए गए अधिकारों में से किसी से असंगत है या उसे छीनता है या न्यून करता हैः

लेकिन जहां ऐसा कानून किसी राज्य के विधान मंडल द्वारा बनाया गया है, वहां इस अनुच्छेद के प्रावधान उस कानून को तब तक लागू नहीं होंगे जब तक ऐसे कानून को जो राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखा गया है, उनकी अनुमति प्राप्त नहीं हो गई है। लेकिन यह और कि जहां किसी कानून में किसी संपदा के राज्य द्वारा अधिग्रहण के लिए कोई प्रावधान किया गया है और जहां उसमें शामिल कोई भूमि किसी व्यक्ति की अपनी जोत में है, वहां राज्य के लिए ऐसी भूमि के ऐसे भाग को, जो किसी उस वक्त लागू कानून के अधीन उसको (उस व्यक्ति को) लागू अधिकतम सीमा के भीतर है, तब उस पर निर्मित या उससे जुड़े किसी भवन या संरचना को अधिग्रहण करना तब तक उस दशा के सिवाय कानून सम्मत नहीं होगा जिस दशा में ऐसी भूमि, भवन या संरचना के अधिग्रहण से संबंधित कानून उस दर से प्रतिकर के भुगतान के लिए प्रावधान करता है जो उसके बाज़ार मूल्य से कम नहीं होगा।)

(2) इस अनुच्छेद में,-

(क) 'संपदा' शब्द का उल्लेख का किसी स्थानीय क्षेत्र के संबंध में वही अर्थ है जो उस शब्द का या उसके समतुल्य स्थानीय शब्द का उस क्षेत्र में लागू भूमि के लगान से संबंधित मौजूदा कानून में है और इसके तहत-

(i) कोई जागीर, इनाम या मुआफी अथवा वैसा ही अन्य अनुदान (और तमिलनाडु और केरल राज्यों में कोई जन्मम् अधिकार भी) होगा,

(ii) रैयतवारी, बंदोबस्त के अधीन धारण की गई कोई भूमि भी होगी,

(iii) कृषि के प्रयोजनों या उसके सहायक प्रयोजनों के लिए आधारित या पट्टे पर दी गई कोई भूमि भी होगी, जिसके तहत बंजर भूमि, वन भूमि, चारागाह या भूमि के कृषकों, कृषि श्रमिकों और ग्रामीण कारीगरों के उपभोग में भवनों और अन्य संरचनाओं के स्थल हैं।

(ख) 'अधिकार' पद के अंतर्गत, किसी संपदा के संबंध में, किसी स्वत्वधारी, उप-स्वत्वधारी, अवर स्वत्वधारी, काश्तकारी अवधि धारक, (रैयत, अवर रैयत) या अन्य मध्यवर्ती (मध्यस्थ या माध्यम) में निहित कोई अधिकार और भू-राजस्व के संबंध में कोई अधिकार या विशेषाधिकार होंगे।

(31ख.) कुछ अधिनियमों और विनियमों का कानूनी मान्यकरण-

अनुच्छेद 31 (क) में वर्णित प्रावधानों की व्यापकता पर विपरीत प्रभाव डाले बिना नौवीं अनुसूची में जिक्र किए गए अधिनियमों और विनियमों और उनके प्रावधानों में से कोई इस आधार पर शून्य या कभी शून्य हुआ नहीं समझा जाएगा कि वह अधिनियम, विनियम या प्रावधान इस भाग के किन्हीं प्रावधानों द्वारा दिए गए अधिकारों में से किसी से असंगत है या उसे छीनता है या कमतर करता है और किसी न्यायालय या अधिकरण के किसी विपरीत निर्णय, डिक्री या आदेश के होते हुए भी, उक्त अधिनियमों और विनियमों में से हर एक, उसे निरस्त या संशोधित करने की किसी सक्षम विधान-मंडल की शक्ति के अधीन रहते हुए, कायम रहेगा।}

{31 ग. कुछ निदेशक तत्वों को प्रभावशाली करने वाले कानूनों का बचाव

अनुच्छेद 13 में किसी बात के होते हुए भी, कोई कानून, जो भाग 4 में प्रावधानित सभी या किन्हीं सिद्धांतों को सुनिश्चित करने के लिए राज्य की नीति को प्रभावित करने वाला है, इस आधार पर शून्य नहीं समझा जाएगा कि वह अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 19 द्वारा दिए गए अधिकारों में से किसी से असंगत है या उसे छीनता है या कमतर करता है और कोई कानून जिसमें यह घोषणा है कि वह ऐसी नीति को प्रभावशाली करने के लिए है, उस पर किसी न्यायालय में इस आधार पर सवाल नहीं किया जाएगा कि वह ऐसी नीति को प्रभावशाली नहीं करता हैः लेकिन जहां ऐसा कानून किसी राज्य के विधान-

मंडल द्वारा बनाया जाता है वहां इस अनुच्छेद के प्रावधान उस कानून को तब तक लागू नहीं होंगे जब तक ऐसे कानून को जो राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखा गया है, उनकी अनुमति प्राप्त नहीं हो गई है।}

सांविधानिक उपचारों का अधिकार

32. इस भाग द्वारा किए गए अधिकारों को लागू कराने के लिए उपचार

(1) इस भाग द्वारा दिए गए अधिकारों को लागू कराने के लिए मुनासिब कार्यवाहियों के जरिए उच्चतम न्यायालय में आवेदन करने के अधिकार की गारंटी दी जाती है।

(2) इस भाग द्वारा दिए गए अधिकारों में से किसी को लागू कराने के लिए उच्चतम न्यायालय को ऐसे निदेश (directions) या किए (हुक्मनामा) जारी करने की शक्ति होगी। पर रिटों (writs) के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण (हैबियस कॉर्पस), परमादेश (मैन्डमस), प्रतिषेध (प्राहिबिशन), अधिकार-पृच्छा (quo warranto) और उत्प्रेषण (certiorari) रिट जो भी समुचित हो।

(3) उच्चतम न्यायालय को कंडिका (1) और कंडिका (2) द्वारा दी गई शक्तियों पर विपरीत प्रभाव डाले बिना, संसद कंडिका (2) के अधीन उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रयोग के लायक किन्हीं या सभी शक्तियों का किसी अन्य न्यायालय को अपने अधिकार क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं के भीतर प्रयोग करने के लिए कानून बनाकर सशक्त कर सकेगी।

(4) इस संविधान द्वारा अन्यथा प्रावधान किए गए के सिवाय, इस अनुच्छेद द्वारा गारंटी किए गए अधिकार निलंबित नहीं किये जाएंगे।

33. इस भाग द्वारा दिए गए अधिकारों का सैन्य बलों आदि पर लागू करने के लिए इनमें परिवर्तन करने की संसद की शक्ति -

संसद, कानून द्वारा सुनिश्चित कर सकेगी कि इस भाग द्वारा दिए गए अधिकारों में से कोई,-

(क) सशस्त्र बलों के सदस्यों को, या

(ख) लोक व्यवस्था बनाए रखने के कार्यभार उठाने वाले बलों के सदस्यों को, या

(ग) खुफिया सूचना या प्रतिसूचना के मकसद से हेतु राज्य द्वारा गठित किसी ब्यूरो या अन्य संगठन में कार्यरत व्यक्तियों को, या

(घ) उपबंध (क) से उपबंध (ग) में उल्लिखित किसी सैन्य बल, ब्यूरो या संगठन के प्रयोजन हेतु स्थापित दूरसंचार प्रणाली में या उसके संबंध में नियोजित व्यक्तियों को, लागू होने में, किस सीमा तक सीमित या निराकृत निषेधित किया जाए जिससे उनके कर्तव्यों का उचित पालन और उनमें अनुशासन बना रहना सुनिश्चित रहे।

34. फौजी कानून लागू वाले क्षेत्र में इस भाग द्वारा दिए गए अधिकारों पर प्रतिबंध

इस भाग के उपरोक्त प्रावधानों में किसी बात के होते हुए भी, संसद कानून द्वारा संघ या किसी राज्य की सेवा में किसी व्यक्ति की या किसी अन्य व्यक्ति को किसी ऐसे कार्य के संबंध में क्षतिपूर्ति कर सकेगी जो उसने भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर किसी ऐसे क्षेत्र में, जहां सेना कानून लागू था, व्यवस्था के बनाए रखने या पुनः कायमी करने के संबंध में किया है या ऐसे क्षेत्र में सेना कानून के अधीन पारित दंडादेश, दिए गए दंड, आदि ज़ब्ती या किए गए अन्य कार्य को कानून मान्य कर सकेगी।

35. इस भाग के प्रावधानों को प्रभावी करने के लिए विधायन -

इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी,-

(क) कानून बनाने की शक्ति संसद को होगी और किसी राज्य के विधान-मंडल को नहीं होगी कि-

(i) अनुच्छेद 16 के खंड (3), अनुच्छेद 32 के खंड (3), अनुच्छेद 33 और अनुच्छेद 34 के अधीन विषयों में से किसी के लिए संसद कानून द्वारा प्रावधान कर सकेगी, तथा

(ii) इस भाग में अपराध घोषित किए गए कार्यों के लिए दंड विहित करने के लिए कानून बनाए

और इस संविधान के प्रारंभ होने के बाद संसद यथाशीघ्र ऐसे कार्यों के लिए दंड विहित करने के लिए कानून बनाएगी जिनका जिक्र उपखंड (ii) में है,

(ख) खंड (क) के उपखंड (i) में जिक्र किए गए विषयों में से किसी से संबंधित या उस खंड के उपखंड (ii) में जिक्र किए गए किसी कार्य के लिए दंड का प्रावधान करने वाला कोई प्रचलित कानून जो भारत राज्यक्षेत्र में इस संविधान के प्रारंभ होने से ठीक पहले लागू था, उसके निबंधनों (शर्तों) के और अनुच्छेद 372 के अधीन उसमें किए गए

किन्हीं अनुकूलनों और परिवर्तनों (परिष्कार) के अधीन रहते हुए तब तक लागू रहेगा जब तक संसद द्वारा उसमें बदलाव या निरसन या संशोधन नहीं कर दिया जाता है।

स्पष्टीकरण - इस अनुच्छेद में, 'लागू कानून' पद का वही अर्थ है जो अनुच्छेद 372 में है।
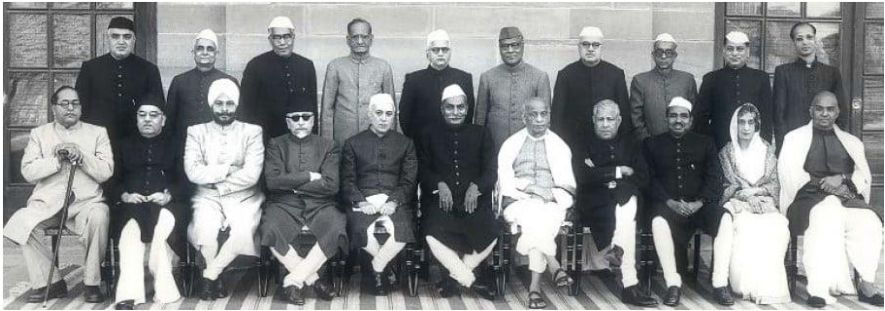
कांग्रेसी सदस्य : *पंडित जवाहर लाल नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल, डॉ राजेंद्र प्रसाद, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, आचार्य जे.बी. कृपलानी, पंडित गोविंद बल्लभ पंत, राजर्षि पुरोषोत्तम दास टण्डन, बालगोविंद खेर, के.एम. मुंशी, टी.टी. कृष्णामाचारी।*

गैर कांग्रेसी सदस्य : *डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी, एन. गोपालास्वामी आयंगर, पंडित हृदयनाथ कुंजरू, सर अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर, टेकचंद बख्शी, प्रो. के.टी. शाह, डॉ. भीमराव अंबेडकर और डॉ. जयकर।*

भाग-4
राज्य की नीति के निदेशक तत्व

36. परिभाषा-

यदि प्रसंगवश अन्य अर्थ अपेक्षित न हो तो इस भाग में 'राज्य' का वही अर्थ है जो इस संविधान के भाग 3 में है।

37. इस भाग में शामिल तत्वों का प्रयोग

इस भाग में शामिल प्रावधान किसी न्यायालय द्वारा लागू नहीं होंगे किंतु फिर भी इनमें दिए हुए तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं और कानून बनाने में इन तत्वों का प्रयोग करना राज्य का कर्तव्य होगा।

38. राज्य लोक कल्याण की उन्नति के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा

(1) राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करे, भरसक प्रभावी रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की उन्नति का प्रयास करेगा।

(2) राज्य विशेष तौर पर आय की असमानताओं को कम करने का प्रयास करेगा और न केवल व्यक्तियों के बीच बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में निवास करने वाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों के समूह के बीच भी प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरों की असमानताओं को समाप्त करने का प्रयास करेगा।

39. राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति तत्व

राज्य विशेष तौर पर अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करेगा जिससे सुनिश्चित तौर पर-

(क) पुरुष और स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो,

(ख) समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार विभाजित हो जिससे सामूहिक हित सर्वोत्तम रूप से निर्वाह हो,

(ग) आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिससे धन और उत्पादन के साधनों का सर्वसाधारण के लिए नुकसानदायक संकेंद्रण न हो,

(घ) पुरुषों और स्त्रियों दोनों का समान कार्य के लिए समान वेतन हो,

(ड.) पुरुष और स्त्री कामगारों के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की नाज़ुक उम्र का दुरुपयोग न हो और आर्थिक ज़रूरतों से मज़बूर होकर नागरिकों को ऐसे रोज़गारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हों,

(च) बालकों को स्वतंत्र और गरिमापूर्ण परिवेश में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएं दी जाएं और बचपन और युवाओं की शोषण तथा नैतिक व आर्थिक परित्याग से रक्षा की जाए।

39 क. समान न्याय और निःशुल्क कानूनी सहायता

राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि कानूनी तंत्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए यह सुनिश्चित करने के लिए वह विशेष तौर पर उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क कानूनी सहायता की व्यवस्था करेगा।

40. ग्राम पंचायतों का संगठन

राज्य, ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए क़दम उठाएगा और उनको ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों।

41. कुछ दशाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार

राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर काम के अधिकार, शिक्षा के अधिकार और बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और निःशक्तता तथा अन्य अभाव की दशाओं में सहायता के अधिकार प्राप्त कराने का प्रभावी प्रावधान बनायेगा।

42. काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता का प्रावधान

राज्य काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए और प्रसूति सहायता के लिए प्रावधान करेगा।

43. कामगारों के लिए निर्वाह मजदूरी आदि

राज्य, उपयुक्त विधान या आर्थिक संगठन द्वारा या किसी अन्य ढंग से कृषि, उद्योग या अन्य प्रकार के सभी कामगारों को काम, निर्वाह मजदूरी, सम्मानपूर्ण जीवनस्तर और अवकाश का परम आनंद सुनिश्चित करने वाली काम की दशाएं तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्राप्त कराने का प्रयास करेगा और विशेष तौर पर ग्रामीण क्षेत्र में कुटीर उद्योगों को वैयक्तिक या सहकारी आधार पर बढ़ाने का प्रयास करेगा।

43 क. उद्योगों के प्रबंधन में कामगारों की हिस्सेदारी

राज्य उपयुक्त विधान द्वारा या किसी अन्य ढंग से सभी उद्योग के उपक्रमों, प्रतिष्ठानों या अन्य संगठनों के प्रबंधन में कामगारों की हिस्सेदारी सुनिश्चित करने के लिए क़दम उठाएगा।

43 ख. सहकारी संगठनों को प्रोत्साहन

राज्य सहकारी समितियों के स्वैच्छिक गठन, स्वायत्त कार्यप्रणाली, लोकतांत्रिक नियंत्रण और पेशेवर प्रबंधन को प्रोत्साहित करेगा।

44. नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता-

राज्य, भारत के संपूर्ण राज्यक्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता सुनिश्चित करने का प्रयास करेगा।

45. छह साल से कम उम्र के बच्चों की प्रारंभिक बाल्यावस्था की देखभाल और शिक्षा का प्रावधान-

राज्य 6 साल से कम उम्र तक के सभी बच्चों के प्रारंभिक बाल्यावस्था की देखभाल और शिक्षा के लिए प्रयास करेगा।

46. अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य कमजोर वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि

राज्य, जनता के कमजोर वर्ग के लोगों और विशेष तौर पर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की शैक्षिक और अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी के साथ उन्नति करेगा तथा सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनका संरक्षा करेगा।

47. पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊंचा करने तथा जन स्वास्थ्य को संवर्धन संबंधी राज्य का कर्तव्य

राज्य अपने लोगों के पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊंचा करने और जन स्वास्थ्य के संवर्धन को अपने प्राथमिक कर्तव्यों में मानेगा और विशेष तौर पर चिकित्सीय उद्देश्यों के अलावा मादक पेयों और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक औषधियों के उपभोग का निषेध करने का प्रयास करेगा।

48. कृषि और पशुपालन का संगठन

राज्य, कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों से संगठित करने का प्रयास करेगा और विशेष तौर पर नस्लों के संरक्षण व सुधार के लिए और गायों और बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक पशुओं के वध का निषेध करने के लिए क़दम उठाएगा।

48 क. पर्यावरण का संरक्षण व संवर्धन और वन व वन्य जीवों की रक्षा

राज्य, पर्यावरण के संरक्षण तथा संवर्धन का और देश के वनों तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।

49. राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण

संसद द्वारा कानून या उसके तहत घोषित राष्ट्रीय महत्व के कलात्मक या ऐतिहासिक अभिरूचि वाले प्रत्येक स्मारक या स्थान या वस्तु की लूट, विरूपण (बिगाड़ना), विनाश, हटाने, निपटाने या निर्यात आदि से संरक्षण करना राज्य का दायित्व होगा।

50. कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण

राज्य की सार्वजनिक सेवाओं में न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् करने के लिए राज्य क़दम उठाएगा।

51. अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि

राज्य,

(क) अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि का,

(ख) राष्ट्रों के बीच न्यायसंगत और सम्मानपूर्ण संबंधों को बनाए रखने का,

(ग) संगठित लोगों के परस्पर व्यवहार में अंतरराष्ट्रीय कानून और संधि-बाध्यताओं के प्रति आदर बढ़ाने का, और

(घ) अंतरराष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता द्वारा निपटारे के लिए प्रोत्साहन देने का प्रयास करेगा।

भाग-4 क
मूल कर्तव्य

51 क. मूल कर्तव्य

भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह-

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदेशों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे,

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे,

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे,

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे,

(ड.) भारत के सभी लोगों में सदभावना और समान भाईचारे की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं (रिवाजों) का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के खिलाफ हैं,

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की समृद्ध विरासत का महत्व समझे और उसे बचाए रखे,

(छ) वन, झील, नदी और वन्य जीव समेत प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दया भाव रखे,

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और जिज्ञासा तथा सुधार की भावना का विकास करे,

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे,

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों सभी क्षेत्रों में उत्कृष्टता की दिशा में बढ़ने का सदैव प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरंतर उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू ले,

(ट) माता-पिता या अभिभावक छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु के अपने बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव

- जवाहरलाल नेहरू

(13 दिसम्बर सन् 1946 ई. को प्रात: 11 बजे भारतीय विधान परिषद् की बैठक, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रारम्भ हुई। माननीय डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने सभापति का आसन ग्रहण किया। सभापति ने जवाहरलाल नेहरू को लक्ष्य-संबंधी प्रस्ताव प्रस्तुत करने को कहा जवाहरलाल नेहरू ने प्रस्ताव पेश किया और संविधान की दिशा के बारे स्पष्ट किया।
जवाहरलाल नेहरू का संविधान सभा में प्रस्तुत यह भाषण भारतीय संविधान की मूल भावना को समझने में महत्वपूर्ण है। इस भाषण में उन्होंने अनेक प्रश्नों पर बेबाक टिप्पणियां की हैं। भारत के हर नागरिक को यह भाषण पढ़ना समझना ही चाहिए। भारतीय संविधान के दर्शन व मूल्यों के जिज्ञासुओं के लिए यह भाषण यहां प्रस्तुत कर रहे हैं - सं.)

साहबे सदर, कई दिनों से कान्स्टीट्यूएंट असेम्बली अपनी कार्यवाही कर रही है। अभी तक कुछ जाब्ते की कार्यवाही हुई है और अभी और जाब्ते की कार्यवाही बाकी है। हम अपना रास्ता साफ कर रहे हैं ताकि आइन्दा उस साफ जमीन पर विधान की इमारत खड़ी करें। यह जरूरी काम था लेकिन मुनासिब है कि कब्ल इसके कि हम और आगे बढ़ें इस बात को साफ कर दें कि हम किधर जाना चाहते हैं, हम देखते किधर हैं और कैसी इमारत हम खड़ी करना चाहते हैं। जाहिर है कि ऐसे मौकों पर किसी तफसील में जाना मुनासिब नहीं होगा। वह तो आप बहुत गौर करके इस इमारत की एक-एक ईंट और पत्थर लगायेंगे। लेकिन जब कोई इमारत बनाई जाती है तो उसके पहले कुछ-कुछ नक्शा दिमाग में मौजूद होता है और ईट-पत्थर जमा किये जाते हैं।

हमारे दिमागों में एक जमाने से आज़ाद हिन्दुस्तान के तरह-तरह के नक्शे रहे हैं। लेकिन अब जब कि हम इस कान्स्टीट्यूएंट असेम्बली का काम शुरू कर रहे हैं तो मुझे

यह जरूरी मालूम होता है और मैं उम्मीद करता हूं कि आप भी इसको मंजूर करेंगे कि इस नक्शे को हम जरा ज्यादा जाब्ते से अपने सामने, हिन्दुस्तान के लोगों के सामने और दुनिया के लोगों के सामने रखें। चुनांचे जो रिजोल्यूशन मैं आपके सामने पेश कर रहा हूं वह इस तरह के एक मकसद को साफ करने का, कुछ थोड़ा-सा नक्शा बतलाने का कि किधर हम देखते हैं, और किस रास्ते पर हम चलेंगे, मजमून का है।

आप जानते हैं कि यह जो कांस्टीट्यूएंट असेम्बली है, बिलकुल उस किस्म की नहीं है जैसा कि हममें से बहुत से लोग चाहते थे। खास हालत में यह पैदा हुई और इसके पैदा होने में अंग्रेजी हुकूमत का हाथ है। कुछ शरायत भी इसमें उन्होंने लगाई है। हमने बहुत गौर के बाद उस बयान को, जो कि इस कान्स्टीट्यूएंट असेम्बली की बुनियाद-सा है, मंजूर किया है। हमारी कोशिश रही है और रहेगी कि जहां तक मुमकिन हो हम उसे उन हदों में चलायें, लेकिन इसके साथ आप याद रखें कि आखिर इस कान्स्टीट्यूएंट असेम्बली के पीछे क्या ताकत है और किस चीज ने इसको बनाया है।

ऐसी चीजें हुकूमतों के बयानों से नहीं बनती हैं। हुकूमत के जो बयान होते हैं, वे किसी ताकत की और किसी मजबूरी की तरजुमानी करते हैं और अगर हम यहां मिले हैं तो हिन्दुस्तान के लोगों की ताकत से मिले हैं। जो बात हम करें, उसी दरजे तक कर सकते हैं, जितनी कि उसके पीछे हिन्दुस्तान के लोगों की ताकत और मंजूरी हो - कुल हिन्दुस्तान के लोगों की, किसी खास फिरके या किसी खास गिरोह की नहीं। चुनांचे हमारी निगाह हर वक्त हिन्दुस्तान के उन करोड़ों आदमियों की तरफ होगी और हम कोशिश करेंगे कि उनके जो जज्बात हों उनका तर्जुमा हम इस विधान में करें। हमको अफसोस है कि इस

असेम्बली के अक्सर मेम्बरान इसमें इस वक्त शरीक नहीं हैं। इससे हमारी एक मानी में जिम्मेदारी बढ़ जाती है। हमें ख्याल करना पड़ता है कि हम कोई बात ऐसी न करें जो औरों को तकलीफ पहुंचाये, या जो बिलकुल किसी उसूल के खिलाफ हो। हम उम्मीद करते हैं कि जो लोग शरीक नहीं हैं वे जल्द शरीक हो जायंगे और वे भी इस आईन के बनाने में पूरा हिस्सा लेंगे, क्योंकि आखिर यह आईन उतनी ही दूर तक जा सकता है जितनी ताकत उसके पीछे हो। हम चाहते हैं कि इससे हिंदुस्तान के सभी लोग सहमत हों और हमारी कोशिश यह रही है और रहेगी कि ऐसी चीज हम बनायें जो कसरत से हिंदुस्तान के करोड़ों आदमियों को मंजूर हो और उनके लिए मुफीद हो। उसके साथ यह भी जाहिर है कि जब कोई बड़ा मुल्क आगे बढ़ता है तो फिर चन्द लोगों के या किसी गिरोह के रोकने से वह रुक नहीं सकता। अगरचे यह असेम्बली, बावजूद इसके कि चन्द मेम्बर इसमें शरीक नहीं हैं, बैठी है, ताहम यह अपना काम जारी रखेगी और कोशिश करेगी कि बहर सूरत इस काम को जारी रखे।

यह जो रिजोल्यूशन मैं आपके सामने पेश कर रहा हूं, एक घोषणा है, एक ऐलान है जो रिजोल्यूशन की शक्ल में है। काफी गौर और फिक्र से यह बनाया गया है। इसके अल्फाज़ पर गौर किया गया है और कोशिश की गई है कि इसमें कोई ऐसी बात न हो जो खिलाफ समझी जाय और बहुत ज्यादा बहस तलब हो। यह तो जाहिर है कि एक बड़े मुल्क में बहस करने वाले ज्यादा हो सकते हैं लेकिन कोशिश यही हुई है कि उसमें बहस-मुबाहिसे की बातें कम-से-कम हों। इसमें बुनियादी बातें हों, उसूल की बातें हों, जो कि एक मुल्क आमतौर से पसंद करता है और मंजूर करता है। मैं नहीं समझता कि इस रिजोल्यूशन में कोई ऐसी बात है जो कि अव्वलन इस ब्रिटिश केबिनेट के बयान की हद से बाहर हो, दोयम यह कि कोई भी हिन्दुस्तानी, चाहे वह किसी गिरोह में हो, उसको नामंजूर करे। बदकिस्मती से हमारे मुल्क में बहुत सारे इख्तलाफ हैं लेकिन इन बुनियादी उसूलों में, जो इनमें लिखे हैं, इक्के-दुक्के आदमियों के अलावा कोई इख्तलाफ मैं नहीं जानता। इस रिजोल्यूशन का क्या बुनियादी उसूल है। वह यह है कि हिन्दुस्तान एक आजाद मुल्क हो - एक सोवरन रिपब्लिक हो। रिपब्लिक लफ्ज का जिक्र हमने अभी तक जाहिर नहीं किया था, लेकिन आप खुद समझ सकते हैं कि आजाद हिंदुस्तान में और हो क्या सकता है। सिवा रिपब्लिक के कोई रास्ता नहीं है। इसकी एक ही शक्ल है कि हिन्दुस्तान में रिपब्लिक हो।

हिन्दुस्तान की जो रियासतें हैं, उन पर क्या असर पड़ेगा, मैं इस बात को साफ करना चाहता हूं क्योंकि इस वक्त खास तौर से रियासतों के नुमाइन्दे इसमें शरीक नहीं हैं। यह भी तजवीज हुई है और शायद एक तरमीम की शक्ल में पेश भी हो कि चूंकि बाज लोग यहां

मौजूद नहीं हैं, इसलिए यह रिजोल्यूशन मुल्तवी कर दिया जाय। मेरा खयाल यह है कि यह तरमीम मुनासिब नहीं है। चूंकि पहली बात जो हमें करनी है और जो हमारे सामने है - दुनिया के सामने है - वह अगर हम न करेंगे तो हम बिल्कुल एक बेजान चीज हो जायंगे और मुल्क हमारी बातों में दिलचस्पी नहीं रखेगा। लेकिन रियासतों का जो जिक्र किया गया है, उसके मुताबिक हमारा इरादा है और हम चाहते हैं और उसको समझना भी लाजिमी बात है कि हिन्दुस्तान का जो यूनियन बने उसमें हिन्दुस्तान के सब हिस्से खुशी से आयें। कैसे आयें, किस ढंग से आयें, उनके क्या अखितयारात हों - ये तो उनकी खुशी पर है।

प्रस्ताव में कोई तफसील नहीं है, सिर्फ बुनियादी बातें हैं। उसमें कुछ खुदमुख्तार हिस्से हैं, उसकी कोई भी तफसील रिजोल्यूशन में नहीं है। लेकिन उसकी जो मौजूदा शक्ल है, उससे रियासतों के ऊपर कोई मजबूरी नहीं आती है। यह गौर करने की बात है कि वह किस ढंग से आयंगे। रियासतों में अन्दरूनी हुकूमत कैसी हो इस बारे में मेरी अपनी एक राय है, लेकिन मैं उसको आपके सामने नहीं रखूंगा| सिवाय इसके कि जाहिर है कि किसी रियासत में वह काम नहीं हो सकता जो हमारे बुनियादी उसूलों के खिलाफ हो या जो और हिन्दुस्तान के हिस्सों के मुकाबले में आज़ादी कम करे। वहां किस शक्ल की हुकूमत हो, जैसे कि आजकल की तरह राजा-महाराजा या नवाब (हैं या नहीं)। इस रिजोल्यूशन को इस बात से मतलब नहीं है। यह वहां के लोगों से ताल्लुक रखता है। यह बहुत मुमकिन है कि राजाओं को अगर लोग चाहें तो रखें, क्योंकि इन बातों से उन्हीं का ताल्लुक है, फैसला वही लोग करेंगे। हमारी रिपब्लिक सारे हिन्दुस्तान के यूनियन की है और उसके अन्दर अलग किसी हिस्से में वहां के लोग अगर चाहें तो अपना अन्दरूनी इन्तजाम दूसरे करें।

इस रिजोल्यूशन में जो लिखा हुआ है मैं नहीं चाहता कि आप उसमें कमी या बेशी करें। मैं यह मुनासिब समझता हूं कि इस कान्स्टीटयूएंट असेम्बली में कोई ऐसी बात न हो जो मुनासिब नहीं हो और किसी वक्त में खास-तौर से वे, जिनका इन सवालों से ताल्लुक है और यहां मौजूद नहीं है, यह कहें कि इस असेम्बली में बेकायदा बातें हुई हैं। जहां तक इस रिजोल्यूशन का ताल्लुक है मैं चाहता हूं कि आपकी खिदमत में उसे पेश कर दूं। एक तफसीली चीज की तरह नहीं, बल्कि इस तरह से कि हमें हिंदुस्तान को किस तरह पर ले जाना चाहिए। आप उसके अलफाज़ों पर गौर करें और मैं समझता हूं कि आप उसे मंजूर करेंगे। लेकिन असल चीज यह है कि इस रिजोल्यूशन का क्या जज्बा है। कानून वगैरा लफ्जों से बनते हैं लेकिन यह उससे ज्यादा जरूरी चीज मालूम होती है। अगर आप उसके लफ्जों में एक कानूनदां की तरह जायंगे तो आप एक बेजान चीज पैदा कर सकते हैं।

हम इस वक्त एक दरवाजे पर हैं, एक जमाना खत्म हो रहा है और एक नया जमाना शुरू होने वाला है। इस मौके पर हमें एक जानदार पैगाम हिन्दुस्तान को देना है और हिन्दुस्तान के बाहर भेजना है। उसके बाद हम अपने विधान और आईन को लफ्जों का ऐसा जामा पहनायेंगे जैसा मुनासिब समझेंगे। लेकिन इस वक्त एक पैगाम भेजना है और यह दिखाना है कि हम क्या करना चाहते हैं। इसलिए इस रिजोल्यूशन से, इस घोषणा से और इस ऐलान से हमें यह दिखाना है कि इससे क्या शक्ल और तस्वीर पैदा हो सकती है। यह इन्सानी दिमाग में जान पैदा करने वाली चीज है, कानूनी चीज नहीं है। लेकिन कानून भी जरूरी चीज है, जरूरी मामलों में। मैं उम्मीद करता हूं कि आप साहेबान इस रिजोल्यूशन को मंजूर करेंगे और जिस शक्ल में चाहें मंजूर करेंगे। रिजोल्यूशन आपके सामने आया है और यह खास हैसियत रखता है। एक तरह से यह एक इकरारनामा सा है, अपने साथी - अपने लाखों करोड़ों भाई बहनों के साथ जो इस मुल्क में रहते हैं। अगर हम इसे मंजूर करते हैं तो यह एक तरह की प्रतिज्ञा या इकरार होगा कि हम इसको पूरा करेंगे। इस शक्ल में मैं इसको आपके सामने पेश करता हूं। आपके पास हिन्दुस्तानी में इस रिजोल्यूशन की नकलें मौजूद हैं। मैं ज्यादा वक्त नहीं लेना चाहता। चुनांचे मैं उनको नहीं पढ़ूंगा । लेकिन मैं अंग्रेजी में उसको पढ़कर सुनाये देता हूं और कुछ और भी उसकी निस्बत अंग्रेजी जबान में कहूंगा।

भारतीय स्वतंत्रता का घोषणा-पत्र

(i) यह संविधान सभा भारतवर्ष को एक पूर्ण स्वतंत्र जनतन्त्र घोषित करने का दृढ़ और गम्भीर संकल्प प्रकट करती है और निश्चय करती है कि उसके भावी शासन के लिए एक संविधान बनाया जाय।

(ii) जिसमें उन सभी प्रदेशों का एक संघ रहेगा जो आज ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतों के तहत तथा इनके बाहर भी हैं और जो आगे स्वतंत्र भारत में सम्मिलित होना चाहते हों ।

(iii) और जिसमें उपरोक्त सभी प्रदेशों को, जिनकी वर्तमान सीमा (चौहद्दी) चाहे कायम रहे या संविधान-सभा और बाद में संविधान के नियमानुसार बने या बदले, एक स्वाधीन इकाई या प्रदेश का दर्जा मिलेगा तथा रहेगा। उन्हें वे सब विशेषाधिकार प्राप्त होंगे व रहेंगे जो संघ को नहीं सौंपे जायंगे और वे शासन तथा प्रबंध सम्बन्धी सभी अधिकारों को बरतेंगे सिवाय उन अधिकारों और कामों के जो संघ को सौंपे जायंगे अथवा जो संघ में स्वाभाविक ही निहित या शामिल होंगे या जो उससे परिणामधर्मी होंगे।

और

(iv) जिसमें सार्वभौम स्वतंत्र भारत और उसके सभी हिस्सों और सरकार के सभी अंगों की अधिकारिता की सभी शक्ति और सत्ता (अधिकार) जनता द्वारा प्राप्त होगी |

तथा

(v) जिसमें भारत के सभी लोगों (जनता) को राजकीय नियमों और साधारण सदाचार के अनुकूल, निश्चित नियमों के आधार पर सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय के अधिकार, समान स्तर व सुविधा की तथा मानवीय समानता के अधिकार और विचारों की, विचारों को प्रकट करने की, विश्वास व धर्म की, ईश्वरोपासना की, काम धन्धे की, संघ बनाने व काम करने की स्वतंत्रता के अधिकार और गारंटी होगी मानी जायेगी।

और

(vi) जिसमें सभी अल्पसंख्यकों, पिछड़े वर्ग के लोगों, कबायली प्रदेशों तथा दलित और पिछड़ी हुई जातियों के लिए पर्याप्त संरक्षण मुहैया कराए जाएंगे।

और

(vii) जिसके द्वारा इस गणतंत्र की सीमाओं में एकता रक्षित रहेगी और जल, थल और हवा पर उसके सार्वभौमिक अधिकार, न्याय और सभ्य राष्ट्रों के नियमों के अनुसार रक्षित होंगे।|

और

(viii) यह प्राचीन देश संसार में अपना योग्य व सम्मानित स्थान प्राप्त करने और संसार की शान्ति तथा मानव जाति का कल्याण करने में अपनी इच्छा से पूर्ण योग देगा।

संविधान सभा की पहली बैठक का आज पांचवां दिन है। अब तक हम, कार्य संचालन के लिए नियम वगैरह बनाने का काम कर रहे थे और यह जरूरी भी था। अब हमारा कार्य क्षेत्र साफ है। हमें अब आधार तैयार करना है और यह काम कुछ दिनों से कर रहे हैं। अभी हमें बहुत कुछ करना बाकी है। इसके पहले कि हम उस सभा के असली काम यानी जाति की आकांक्षाओं को, उसके चिर स्वप्नों को लिखित रूप देने का महान काम प्रारम्भ करें, हमें कार्य संचालन के लिए नियम पास करने हैं और समितियां बनानी हैं। परन्तु इस अवसर पर भी निश्चित ही यह बहुत वांछनीय है कि हम खुद को, उन लोगों को जिनकी निगाहें सभा की ओर हैं, इस देश की करोड़ों जनता को, जो हमारी ओर देख रही है तथा सारी दुनिया को यह आभास दे दें कि हम क्या करेंगे, हमारा ध्येय क्या है और हम किस दिशा में जा रहे हैं। इसी उद्देश्य से मैंने यह प्रस्ताव इस सभा के सामने रखा है। प्रस्ताव होते हुए भी यह प्रस्ताव से बहुत कुछ ज्यादा है। यह एक घोषणा है, यह एक दृढ़ निश्चय है यह एक प्रतिज्ञा और दायित्व है और हम सबों के लिए तो, हमें विश्वास है कि यह एक व्रत है! मैं चाहता हूं कि सभा इस प्रस्ताव पर कानूनी शब्दजाल की संकुचित भावना से विचार

न करे बल्कि उसके मूल में जो भावना है उसे मद्देनजर रखकर उस पर विचार करे। अक्सर शब्दों में जादू का सा चमत्कार होता है, पर कभी-कभी यह शब्दों का जादू भी मानव भावना को, जाति की जबरदस्त लालसा को पूर्णरूपेण व्यक्त नहीं कर पाता। अतः मैं यह नहीं कह सकता कि प्रस्तुत प्रस्ताव उस भावना को व्यक्त करता है जो आज भारतीय जनता के दिल और दिमाग में है। यह प्रस्ताव संसार को टूटे फूटे शब्दों में यह बतलाना चाहता है कि हमने इतने दिनों से किस बात को सोच रखा था, और हमारा स्वप्न क्या था? और निकट भविष्य में हम लक्ष्य तक पहुंचने की आशा करते हैं। इसी भावना से, मैं यह प्रस्ताव सभा के सामने रख रहा हूं और मुझे विश्वास है कि सभा भी इसी भावना से उस प्रस्ताव को ग्रहण करेगी और अन्त में स्वीकार करेगी। सभापति महोदय, मैं आपके सामने और सभा के सामने विनग्रतापूर्वक यह सुझाव रखना चाहता हूं कि जब प्रस्ताव को मंजूर करने का समय आवे तो हम सिर्फ रस्म के रूप में हाथ उठाकर ही उसे न स्वीकार करें बल्कि भक्ति भाव से खड़े होकर उसे स्वीकार करें और इसे अपना नवीन व्रत समझें |

सभा को मालूम है कि यहां बहुत से लोग गैरहाजिर हैं और बहुत से सदस्य, जिन्हें इसमें शामिल होने का हक है, यहां नहीं आये हैं। हमें इस बात का अफसोस है, क्योंकि हम चाहते हैं कि भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों और भिन्न-भिन्न दलों से ज्यादा से ज़्यादा प्रतिनिधियों को, हम अपने साथ शामिल करें। हमने एक महान काम उठा लिया है और इसमें हम सब लोगों का सहयोग पाने की कोशिश करते हैं। यह इसलिए कि भारत का भविष्य, जिसकी कल्पना हमने की है, किसी खास दल, सम्प्रदाय या प्रान्त के लिए ही सीमित न होगा बल्कि वह तो भारत की चालीस करोड़ जनता के लिए होगा। हमें इन कुछ बेंचों को खाली देखकर और कुछ साथियों को, जो यहां हाजिर हो सकते थे, गैरहाजिर पाकर बड़ा अफसोस होता है। मुझे आशा है और मैं समझता हूं कि वे आयेंगे और यह सभा बाद में उन सबके सहयोग का लाभ प्राप्त करेगी। पर इस बीच में हम सब पर एक जिम्मेदारी है कि हम अपने गैरहाजिर दोस्तों का ख्याल रखें और हमेशा यह याद रखें कि हम यहां किसी खास दल के लिए काम करने नहीं आये हैं। हमें सारे हिन्दुस्तान का, यहां के चालीस करोड़ नर नारियों का सदा ख्याल रखना है। हम सब फिलहाल अपनी अपनी सीमाओं में दल विशेष के हैं, चाहे इस दल के या उस दल के, और शायद अपने अपने दलों के साथ काम करना भी जारी रखेंगे। फिर भी ऐसा मौका आता है कि हमको दलगत भावना से ऊपर उठ जाना पड़ता है और सारी जाति या देश का-यहां तक कि कभी कभी उस समूचे संसार का, ख्याल रखना पड़ता है, जिसका यह देश भी एक महत्वपूर्ण भाग है। जब मैं इस संविधान सभा के काम का ख्याल करता हूं तो ऐसा मालूम पड़ता है कि अब समय आ गया है कि जहां तक हमसे बन पड़े हम व्यक्तिगत भावना और दलबन्दी के

झगड़ों से ऊपर उठकर अधिक से अधिक व्यापक, सहिष्णु और असरकारक ढंग से उस महती समस्या पर विचार करें जो आज हमारे सामने है ताकि हम जो भी संविधान बनायें वह सारे भारत के योग्य हो, सारा संसार स्वीकार करे कि हमने सचमुच महान कार्य का सम्पादन उसी योग्यता से किया, जिसे हमें करना चाहिए था।

एक और भी व्यक्ति यहां आज अनुपस्थित है जो अवश्य ही हममें से बहुतों के दिल में मौजूद है। हमारा इशारा उस व्यक्ति की ओर है, जो सारे देश का नेता है जो समस्त राष्ट्र का जनक है, (हर्ष-ध्वनि) जो इस सभा का निर्माता रहा है, जो हमारे कितने ही अतीत कार्यों का कर्ता रहा है और हमारी भविष्य की बहुतेरी कार्रवाइयों का कर्ता धर्ता रहेगा। आज वह यहां उपस्थित नहीं है। वह अपने महान आदर्शों की पूर्ति के लिए भारत के एक सुदूर कोने में निरंतर कार्यरत है। परंतु मुझे इस बात में जरा भी शक नहीं है कि उसकी आत्मा इस भवन में वर्तमान है और इस महान कार्य के सम्पादन में हमें सतत आशीर्वाद दे रही है।

सभापति महोदय, यहां बोलते हुए मैं चारों ओर फैली यादों और समस्याओं के बोझ से अपने को बोझिल अनुभव करता हूं। हम लोग एक युग को खत्म कर शायद बहुत जल्द ही एक नए युग में प्रवेश करने वाले हैं। मेरा ध्यान आज भारत के महान अतीत की ओर, उसके पांच हजार वर्ष के इतिहास की ओर जाता है उसके इतिहास के प्रारंभ से - जो मानव इतिहास का प्रारंभ माना जा सकता है - आज तक का सारा इतिहास हमारी आंखों के सामने है। वह समस्त अतीत आज हमारे चारों ओर है और हमें आनन्द और जीवन प्रदान कर रहा है पर साथ ही साथ उससे, यह सोचकर मुझे कुछ वेदना भी होती है कि क्या हम उस अतीत के लायक हैं? ताकतवर अतीत और ज्यादातर ताकतवर भविष्य के बीच स्थित वर्तमान की तलवार के धार पर खड़े होकर जब मैं भविष्य की सोचता हूं, उस भविष्य की, जो मुझे विश्वास है कि अतीत से भी महत्तर है, तो अपने महान कार्य भार से अभिभूत हो जाता हूं और भयभीत हो जाता हूं। भारतीय इतिहास के अद्भुत अवसर पर हम यहां एकत्र हुए हैं। इस परिवर्तन क्षण में प्राचीन युग से एक नवीन युग में प्रवेश करने से इस बदलाव के वक्त मुझे कुछ अचरज-सा मालूम होता है, वैसा ही अचरज जैसा रात से दिन होने में मालूम पड़ा है, हो सकता है दिन बादलों से ढंक रहा पर है तो आखिर दिन, इसलिए बादल फटने का दिन अवश्य निकलेगा। इन सब बातों के कारण मुझे इस सभा के सामने बोलने और अपने सारे विचार रखने में कुछ कठिनाई मालूम होती है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि इन पांच हजार वर्षो के लम्बे सिलसिले में बड़ी-बड़ी विभूतियां,जों आईं और चली गईं, आज मेरी आखों के सामने हैं। उन मित्रों की मूर्तियां भी मानों आज मेरे सन्मुख हैं, जिन्होंने भारत की आजादी के लिए लगातार जद्दोजनद की है। आज हम

समाप्त-प्रायः युग के छोर पर खड़े हैं और नये युग में प्रवेश पाने के लिए परिश्रम और प्रयास कर रहे हैं। मुझे भरोसा है कि सभा मौजूदा अवसर की गंभीरता समझेगी और उसी गंभीरता से इस प्रस्ताव पर गौर करेगी जिसे सभा के सन्मुख पेश करने का मुझे गौरव है। मैं समझता हूं कि इस प्रस्ताव पर बहुत से संशोधन सभा के सामने आ रहे हैं। इनमें से बहुतों को मैंने नहीं देखा है। सभा के किसी भी सदस्य को अधिकार है कि वह इसके सामने कोई भी संशोधन रखे और सभा को अधिकार है कि वह इसके सामने कोई भी संशोधन रखे और सभा को अधिकार है कि वह उसे मंजूर करे या नामंजूर। पर मैं सम्मान सहित आपको यह सुझाव दूंगा कि यह अवसर ऐसा नहीं है कि हम छोटी छोटी बातों में कानूनी और रस्मी ढंग अपनायें, जबकि हमें बड़ी बड़ी समस्याओं का सामना करना है। बड़े-बड़े कामों को अंजाम देना है और महत्वपूर्ण मसले तय करने हैं। इसलिए मैं उम्मीद करूंगा कि सभा गंभीरता से ही इस महत्वपूर्ण प्रस्ताव पर बहस करेगी और शाब्दिक झगड़े में ही अपने को न भुला देगी।

मुझे विभिन्न संविधान सभाओं का भी ख्याल आता है जो पहले बैठ चुकी हैं। अमेरिकन राष्ट्र के निर्माताओं ने संविधान सभा में एकत्र होकर राष्ट्र निर्माण के लिए एक संविधान तैयार किया था, जो आज डेढ़ सौ बरस की परीक्षा में पक्का साबित हुआ है। इस संविधान निर्माण में क्या क्या बातें हुईं, उन सबकी मैं कल्पना कर रहा हूं। इस संविधान के फलस्वरूप जो महान राष्ट्र उत्पन्न हुआ। उसको मैं सोच रहा हूं। मेरी कल्पना उस जबर्दस्त क्रांति की ओर जा रही है जो आज से 150 वर्ष पहले हुई थी। मैं कल्पना कर रहा हूं उस संविधान सभा की, जो आनन्ददायक उस पेरिस नगर में आहूत हुई थी, जिसने आजादी की कितनी ही लड़ाइयां लड़ी हैं। मैं सोच रहा हूं उन कठिनाइयों को जो इस संविधान सभा को मिलीं। मैं सोच रहा हूं उन बाधाओं को जिन्हें सम्राट तथा अधिकारियों ने उस सभा की राह में रोड़े डाले।

इस सभा को स्मरण होगा कि जब इसके मार्ग में रोड़े अटकाए गए, यहां तक कि उसे एकत्र होने के लिए स्थान देने से भी इंकार किया गया तो परिषद् ने टेनिस कोर्ट में अपनी बैठक की और वहां ही उसने शपथ ग्रहण की, जो 'दी ओथ ऑफ टेनिस कोर्ट" के नाम से मशहूर है। सम्राट और अधिकारियों की, समस्त बाधाओं के बावजूद वे एकत्र होकर तब तक अपना काम करते रहे जब तक कि उन्होंने अपने काम को पूरा न कर लिया, जिसे पूरा करने का उन्होंने बीड़ा उठाया था। मुझे विश्वास है कि हम लोग भी उसी गम्भीरता और पवित्र भावना से यहां इकट्ठा हुए हैं और हम भी चाहे इस भवन में हो या अन्यत्र, मैदान में, बाजार में, कहीं भी एकत्र होकर - तब तक अपना काम करते जायंगे जब तक कि उसे पूरा न कर लें। इसके बाद हमारी याद जाती है हालिया अतीत की उस महती क्रांति की ओर

जो रूस में हुई थी और जिसके नतीजतन एक नये ढंग के राज्य-रूस यूनियन ऑफ सोवियत रिपब्लिक-जैसे शक्तिशाली राष्ट्र का प्रादुर्भाव हुआ जो आज विश्व के कामों में प्रमुख भाग ले रहा है। यह महान शक्तिशाली राष्ट्र हम भारतवासियों के लिए न सिर्फ एक महान शक्तिशाली राष्ट्र ही है वरन् पड़ोसी भी है।

इस तरह हम आज इन बड़े-बड़े उदाहरणों को स्मरण करते हैं और उनकी सफलताओं से लाभ उठाने की एवं उनकी असफलताओं से बचने की कोशिश करते हैं। शायद हम असफलताओं से बच न सकें क्योंकि कुछ न कुछ असफलता तो मानव प्रयास में सन्निहित रहती ही है। फिर भी हमें निश्चय है कि हम तमाम बाधाओं और कठिनाइयों के बावजूद आगे बढ़ेंगे और अपनी चिरसंचित आकांक्षाओं और स्वप्नों को प्राप्त करेंगे। इस प्रस्ताव में, जो सभा जानती है कि बड़ी सावधानी से बनाया गया है, हमने अत्यधिक या अत्यल्प कथन को दूर ही रखा है। इस तरह के प्रस्ताव का बनाना बड़ा कठिन है। यदि आप उसमें बहुत कम बात व्यक्त करते हैं तो वह केवल एक कोरा प्रस्ताव ही रह जाता है और दूसरे यदि आप उसमें अधिक कुछ कहते हैं तो यह संविधान बनाने वाले सदस्यों के कार्य में कुछ हस्तक्षेप सा होता है। यह प्रस्ताव उस संविधान का मार्ग नहीं है जो हम बनाने जा रहे हैं और हमें इसी दृष्टि से इसे देखना चाहिए। सभा को संविधान बनाने की पूरी स्वतन्त्रता है और दूसरे लोगों को भी, जब वे सभा में आ जायें तो संविधान बनाने की पूरी आज़ादी है। अतः यह प्रस्ताव दोनों सीमाओं के बीच की राह है और केवल कुछ बुनियादी उसूलों को निर्धारित करता है जिन पर, मुझे पक्का विश्वास है, किसी दल या व्यक्ति को विवाद नहीं हो सकता। हम कहते हैं कि हमारा यह दृढ़ और पवित्र निश्चय है कि हम सर्वाधिकारपूर्ण स्वतन्त्र राष्ट्र कायम करेंगे। यह ध्रुव निश्चय है कि भारत सर्वाधिकारपूर्ण स्वतन्त्र, प्रजातन्त्र होकर ही रहेगा। मैं राजतन्त्र की बहस में नहीं जाऊंगा। अवश्य ही हम भारत में शून्य से (बिना किसी आधार के) राजतन्त्र नहीं स्थापित कर सकते। जब भारत को हम सर्वाधिकारपूर्ण स्वतंत्र राष्ट्र बनाने जा रहे हैं तो किसी बाहरी शक्ति को हम राजा न मानेंगे और न किसी स्थानीय राजतंत्र की ही तलाश करेंगे। यह तो निश्चय ही प्रजातन्त्रीय होगा।

कुछ दोस्तों ने यह सवाल उठाया है कि मैंने प्रस्ताव में 'लोकतन्त्र' शब्द क्यों नहीं रखा। मैंने उन्हें बताया कि रिपब्लिक राज्य डेमोक्रेटिक न हो ऐसा समझा जा सकता है, लेकिन हमारा सारा अतीत इस बात का गवाह है कि हम लोकतन्त्रीय संस्था की ही स्थापना चाहते हैं। स्पष्ट है कि हमारा लक्ष्य लोकतन्त्रीय व्यवस्था की स्थापना ही है और उससे कम हम कुछ नहीं चाहते। उस लोकतन्त्र का क्या रूप हो, यह बात दूसरी है। वर्तमान युग के लोकतन्त्र ने, यूरोप और अन्य स्थानों की लोकतन्त्रीय शासन पद्धति ने,

संसार की तरक्की में बड़ा हिस्सा लिया है। इसमें शक है कि ये लोकतंत्र, यदि सही माने में इन्हें लोकतंत्र रहना है तो, अपना मौजूदा स्वरूप ज्यादा दिनों तक रख सकेंगे। मुझे उम्मीद है कि हम लोग किसी खास तथाकथित लोकतन्त्रीय देश की पद्धति की नकल नहीं करेंगे। हो सकता है हम लोग मौजूदा लोकतन्त्र को और भी अच्छा बनायें। जो भी हो, हम जो भी शासन पद्धति यहां कायम करें वह हमारी जनता की मनोवृत्ति के अनुकूल और सबको मंजूर होनी चाहिए।| हम लोकतन्त्र चाहते हैं। यह काम इस सभा का है कि वह तय करे उस लोकतन्त्र को, क्या चेहरा देगी। सभा देखेगी कि हमने इस प्रस्ताव में डेमोक्रेटिक शब्द नहीं रखा है क्योंकि हमने समझा कि रिपब्लिक शब्द के अन्दर वह समाहित है और हम गैर जरूरी अतिरिक्त शब्द रखना नहीं चाहते हैं। पर हमने प्रस्ताव में डेमोक्रेटिक (लोकतन्त्रीय) शब्द से बहुत कुछ अधिक रख दिया है। इस प्रस्ताव में हमने लोकतन्त्र का सार सन्निहित कर दिया है। बल्कि मैं तो कहूंगा कि लोकतंत्र का ही सार नहीं वरन् इसमें हमने आर्थिक लोकतन्त्र का सार भी सन्निहित कर दिया है। कुछ लोग इस बिना पर इस प्रस्ताव का विरोध कर सकते हैं कि इसमें समाजवादी राष्ट्र नहीं अपनाया है। सज्जनों, मैं समाजवाद का समर्थक हूं और मुझे आशा है कि सारा हिन्दुस्तान समाजवाद का समर्थन करेगा और वह समाजवादी शासन विधान बनायेगा और सारी दुनिया को भी इसी दिशा में चलना होगा। उस समाजवाद का स्वरूप क्या हो यह भी आपका दूसरा विचारणीय विषय है। पर असली बात यह है कि यदि मैं अपनी इच्छानुसार इस प्रस्ताव में यह रखता कि हम समाजवादी राष्ट्र चाहते हैं तो शायद इसमें कुछ ऐसी बातें आ जातीं जो बहुतों को ग्राह्य होती और कुछ को अग्राह्य । हम यह नहीं चाहते थे कि ऐसी बातों को लेकर यह प्रस्ताव विवादात्मक हो जाये। इसलिए प्रस्ताव में हमने पारिभाषिक शब्द नहीं रखे हैं बल्कि हम क्या चाहते हैं इसका निचोड़ रख दिया है। यह आवश्यक है और मैं समझता हूं इसमें कोई विवाद नहीं, कुछ लोगों ने मुझे कहा है कि इस प्रस्ताव में रिपब्लिक (प्रजातन्त्र) का रखा जाना देशी नरेशों को कुछ नाराज कर सकता है। सम्भव है इससे वे नाराज हों। मैं इस बात को स्पष्ट कर देना चाहता हूं और सभा जानती है कि मैं निजी रूप से राजन्त्रीय पद्धति में, वह चाहे कहीं भी हो, विश्वास नहीं करता। संसार से राजतन्त्र आज तेजी से मिटता जा रहा है। फिर भी यह मेरे विश्वास की बात नहीं है। देशी राज्यों के सम्बन्ध में हम लोगों के विचार बहुत दिनों से यही रहे हैं कि सबसे पहले इन राज्यों की प्रजा को आने वाली आज़ादी में पूरा हिस्सा मिलना चाहिए। यह बात तो मेरी कल्पना में ही नहीं आती कि देशी रियासतों की प्रजा और भारत के अन्य भागों की प्रजा की स्वतन्त्रता का अलग-अलग मापदंड हो। संघ में देशी रियासतें किस तरह सम्मिलित होंगी इस बात को तो यह सभा ही रियासतों के प्रतिनिधियों से रायशुमारी करके तय करेगी और मुझे आशा है कि

सभा, रियासतों से सम्बन्ध रखने वाले सभी मसलों को रियासतों के सच्चे प्रतिनिधियों से ही बातचीत कर तय करेगी। हां, मैं जानता हूं कि उन मसलों को तय करने में जिनका देशी राज्यों के शासकों से सम्बन्ध है, हम शासकों के साथ या उनके प्रतिनिधियों के साथ भी बातचीत करने के लिए पूरी तरह रजामन्द हैं। पर अन्त में जब हम भारत का संविधान बनाएंगे तो जिस तरह भारत के अन्य भागों के जन प्रतिनिधियों से सम्पर्क रखकर उसका निर्माण करेंगे उसी तरह देशी रियासतों के जन प्रतिनिधियों से भी सम्पर्क रखकर हम विधान को अन्तिम रूप देंगे। (हर्ष-ध्वनि) जो भी हो, हम या तो नियम निर्धारित कर देंगे या खुद आपसी रजामन्दी से तय कर लेंगे कि देशी रियासतों और अन्य भागों के लिए स्वतन्त्रता का स्तर समान होगा। मैं खुद तो यह चाहूंगा और इसकी सम्भावना भी है कि सारे देश में शासन व्यवस्था या हुकूमत की मशीनरी एक समान हो। पर यह बात ऐसी है जिसका फैसला रियासतों के परामर्श और सहयोग से करना होगा। मैं नहीं चाहता और मेरा ख्याल है यह सभा भी नहीं चाहेगी कि देशी राज्यों पर उनकी मर्जी के खिलाफ कुछ लादा जाय। अगर किसी रियासत की प्रजा कोई खास तरह की शासन प्रणाली चाहती है, चाहे वह राजन्त्रात्मक ही क्यों न हो, उन्हें वैसी प्रणाली रखने का अधिकार है। इस सभा को मालूम होगा कि ब्रिटिश कॉमनवेल्थ में भी आज आयरलैण्ड एक रिपब्लिक (प्रजातन्त्र) है और फिर भी कई तरह से यह ब्रिटिश कॉमनवेल्थ का एक सदस्य भी है। इसलिए यह बात तो समझ में आ सकती है। मैं नहीं कह सकता कि होगा क्या, क्योंकि उसका निश्चय करना कुछ इस सभा का और कुछ दूसरों का काम है। इसकी असम्भावना या इसमें कोई असामंजस्य नहीं है कि रियासतों में किसी खास तरह की शासन प्रणाली हो, बशर्ते कि वहां पूरी स्वतन्त्रता और दायित्वपूर्ण शासन हो और वह प्रजा के आधीन हो। यदि किसी रियासत की प्रजा राजतन्त्र के प्रधान यानी राजा, महाराजा और नवाब को पसंद करती है तो, मैं चाहूं या न चाहूं, निश्चय ही मैं इसमें कतई दखल देना नहीं पसन्द करता। अतः मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि जहां तक इस प्रस्ताव या घोषणा का सम्बन्ध है यह, आगे जो कुछ करना चाहेगी या जो बातचीत चलायेगी इसमें किसी तरह की रुकावट नहीं डालता। सिर्फ एक ही माने में यह प्रस्ताव हम कुछ सीमा या पाबन्दी (यदि आप इसे पाबन्दी समझें) डाल देता है। वह यह कि इस घोषणा में जो बुनियादी उसूल हैं हम उन पर ही चलेंगे। मैं तो कहता हूं कि ये बुनियादी सिद्धांत, सही माने में, विवादात्मक हैं ही नहीं। हिन्दुस्तान में कोई भी इनका विरोध नहीं करता और न किसी को इनका विरोध करना ही चाहिए पर यदि कोई विरोध करता है तो हम उनका मुकाबला करेंगे। और अपनी-अपनी जगह पर डटे रहेंगे। (हर्ष-ध्वनि)

सभापति महोदय, हम भारत के लिए संविधान बनाने बैठे हैं। स्पष्ट है कि हमारे इस काम का बाकी दुनिया पर जोरदार प्रभाव पड़ेगा। यह इसलिए नहीं कि इससे संसार क्षेत्र में एक नये शक्तिशाली राष्ट्र का अभ्युदय होता है बल्कि इस कारण से कि भारत ऐसा देश है, जो न सिर्फ अपनी आबादी या क्षेत्रफल के विस्तार से बल्कि अपने प्रचुर साधनों और उसके उपयोग की क्षमता से विस्तृत संसार के कामों में शीघ्र ही जबरदस्त हाथ बंटा सकता है। आज भी जब हम आजादी के किनारे खड़े हैं, भारत ने संसार के मामलों में जबरदस्त हाथ बंटाना शुरू कर दिया है। इसलिए संविधान-निर्माताओं के लिए यह उचित है कि इस अंतर्राष्ट्रीय पहलू को हमेशा ध्यान में रखें। हम संसार के साथ दोस्ताना बर्ताव चाहते हैं। हम सब देशों से दोस्ती चाहते हैं। अतीत के झगड़ों के एक लम्बे इतिहास के बावजूद इंग्लैंड को अपना दोस्त बनाना चाहते हैं। सभा को मालूम है कि मैं हाल ही में विलायत गया था। मैं कुछ कारणों से, जिन्हें यह सभा अच्छी तरह जानती है, वहां नहीं जाना चाहता था। लेकिन ग्रेट-ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री के निजी अनुरोध के कारण मैं वहां गया। वहां मुझे सभी जगह सौजन्य मिला। फिर भी भारतीय इतिहास के इस भावनापूर्ण मनोवैज्ञानिक अवसर पर जब हम दुनिया से और अपने अतीत सम्पर्क एवं संघर्ष के कारण ग्रेट-ब्रिटेन से तो खासतौर पर सहयोग, मैत्री तथा खुशी के संवाद पाने के भूखे थे, दुर्भाग्य से हम खुशी का सम्वाद तो दूर रहा, बहुत कुछ निराशा का सम्वाद लेकर लौटे। मुझे उम्मीद है कि ये नई कठिनाइयां जो ब्रिटिश मन्त्रीमंडल और वहां के अन्य अधिकारियों के हाल के वक्तव्यों से उत्पन्न हुई हैं, वे हमारी राह न रोकेंगी। और हम, यहां उपस्थित और अनुपस्थित सब के सहयोग से आगे बढ़ने में कामयाब होंगे। मुझे इस बात से सख्त सदमा पहुंचा है, सख्त चोट पहुंची है कि ऐन मौके पर जब हम कदम बढ़ाने जा रहे हैं हमारे रास्ते में रुकावटें डाली गईं। हम पर नई नई पाबन्दियां जिनका पहले कहीं जिक्र भी न था, लगाई गई और नये तरीके सुझाए गए। मैं किसी व्यक्ति की सदभावना पर कोई आपत्ति नहीं करना चाहता। लेकिन मैं अवश्य ही यह कह देना चाहता हूं कि इसका कानूनी पहलू चाहे कुछ भी क्यों न हों, पर जब हमें ऐसे राष्ट्र से काम पड़ता है जो आजादी के लिए मतवाला हो तो ऐसे भी अवसर उपस्थित होते हैं कि कानून लचर हो जाता है और उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। यहां हममें से बहुतों ने गत वर्षों से एक या अधिक पीढ़ियों से भारत की आज़ादी की लड़ाई में अक्सर हिस्सा लिया है। हम आफतों के बीच से गुजरे हैं। हम इसके आदी हैं और यदि जरूरत आ गई तो हम पुनः विपत्तियों से खेलेंगे (हर्ष-ध्वनि) | फिर भी इन तमाम संघर्षों के दौर में हम हमेशा ही ऐसे मौकों की बात सोचते रहे हैं जब हम संघर्ष और विध्वंस नहीं बल्कि निर्माण के काम में लग जायें। और उस समय जब हम लोगों को ऐसा मालूम पड़ा कि स्वतंत्र भारत में रचनात्मक काम करने का समय आ रहा है

जिसकी बड़ी खुशी से बाट जोह रहे थे कि नई बाधायें हमारे रास्ते में डाली गईं। चाहे जो भी शक्ति इसके पीछे हो, इससे यही जाहिर होता है कि चतुर, बुद्धिमान और योग्य व्यक्तियों में भी अपनी मर्यादा और पद के अनुकूल कल्पनामूलक साहस का अभाव होता है। यदि आपको किसी राष्ट्र से काम पड़ता है तो अपनी कल्पना, भावना और साथ ही साथ बुद्धि की दौड़ से ही आप उसको ठीक-ठीक समझ सकते हैं। अतीत से ही यह दुखद परम्परा चली आती है कि भारतीय समस्याओं को समझने में शासकों में कल्पना शक्ति का सर्वथा अभाव रहा है। इन लोगों ने अक्सर हमारी समस्याओं में अनावश्यक हाथ डाला या हमें राय दी और यह न समझा कि वर्तमान भारत न किसी की सलाह चाहता है और न अपनी मर्जी के खिलाफ किसी का समाधान ही अपने ऊपर लादना चाहता है। भारत को प्रभावित करने का एक मात्र रास्ता है मैत्री, सहयोग और सद्भावना का बर्ताव। जबर्दस्ती उस पर कुछ भी लादने या मध्यस्थ बनने की थोड़ी भी चेष्टा पर हम आक्रोश करते हैं और करेंगे (हर्ष ध्वनि)। गत कई महीनों में, बहुत ही कठिनाइयों के बावजूद भी हमने ईमानदारी से सहयोग का वातावरण पैदा करने की हरचन्द कोशिश की। हमारी यह कोशिश जारी रहेगी। लेकिन मुझे डर है कि अगर दूसरी ओर से इसका काफी जवाब न मिला तो सहयोग का वातावरण नष्ट या दुर्बल हो जायगा। हमने महान काम का बीड़ा उठाया है, हमें विश्वास है कि हम उसे पूरा करने का प्रयास जारी रखेंगे। हमें यह भी विश्वास है कि यदि इस कार्य में प्रयत्नशील रहे तो सफलता भी अवश्य मिलेगी। जहां हमें अपने ही देशवासियों से निबटना है हम सद्भावना से उस काम में लगे रहेंगे यद्यपि हम समझते हैं कि हमारे कुछ देशवासी गलत रास्ता पकड़ते हैं। जो भी हो आज नहीं तो कल या परसों हमें इस देश में मिलकर ही काम करना है और हमारा आपसी सहयोग अवश्यम्भावी है। अतः हमें इस समय ऐसे किसी भी काम से बचना होगा जिससे हमारे भविष्य के मार्ग में जिसके लिए हम काम कर रहे हैं, कोई नई बाधा उपस्थित हो जाए। इसलिए जहां तक हमारे देशवासियों का सम्बन्ध है उनका अधिक से अधिक सहयोग पाने के लिए हमें यथाशक्ति चेष्टा करनी है। परन्तु सहयोग का यह अर्थ नहीं कि हम अपने उन मौलिक सिद्धान्तों का ही त्याग कर बैठें जिनके लिए हम यह सब कुछ कर रहे हैं और करना चाहिए। सहयोग का यह मतलब नहीं है कि हम उन सिद्धान्तों को ही कुर्बान कर दें जिनके लिए हम जीते हैं। इसके अतिरिक्त, जैसा मैंने अभी कहा है हम इंग्लैंड का भी सहयोग चाहते रहे और इस समय भी चाहते हैं जब वातावरण आपसी संदेह से भरा हुआ है। हम समझते हैं कि यदि उन्होंने सहयोग देने से इन्कार किया तो अवश्य ही इससे भारत को क्षति पहुंचेगी, पर इंग्लैंड को उससे भी ज्यादा क्षति पहुंचेगी और संसार को भी कुछ नुकसान पहुंचेगा। युद्ध से हम अभी फुरसत पाये हैं और लोगों में व्यापक रूप से आगामी युद्ध की मन्द-मन्द चर्चा

चलने लगी है। ऐसे समय में नवीन प्राणपूर्ण और निर्भय भारत का पुनर्जन्म होने जा रहा है। विश्व की इस उथल-पुथल से भारत के पुनर्जन्म का यह शायद उपयुक्त अवसर है। लेकिन ऐसे समय में हम लोगों की दृष्टि जिन पर भारत का विधान बनाने का जबर्दस्त भार है, खूब साफ दूरदर्शिनी होनी चाहिए। हमें वर्तमान की महती आशाओं और भविष्य की उससे भी महत्तर आशाओं पर सोच विचार करना है और इस दल या उस दल के क्षुद्र लाभ की तलाशी में ही अपने को नहीं खो देना है। संविधान सभा में बैठकर आज हम विश्व के रंगमंच पर अभिनय कर रहे हैं और सारे संसार की निगाह, हमारे सम्पूर्ण अतीत की दृष्टि, हमारी ओर है। हम यहां जो कुछ भी कर रहे हैं। उसे हमारा अतीत देख रहा है और भविष्य भी देख रहा है यद्यपि अभी उसका जन्म नहीं हुआ है। मैं इस प्रस्ताव को इसी दृष्टि से देखता हूं और मैं सभा से अनुरोध करूंगा कि वह अपने महान अतीत को, वर्तमान के जबर्दस्त उथल-पुथल को और उदित होने वाले महत्तर भविष्य को दृष्टि में रखकर उस पर विचार करे। सभापति महोदय, इन शब्दों के साथ मैं यह प्रस्ताव पेश करता हूं।
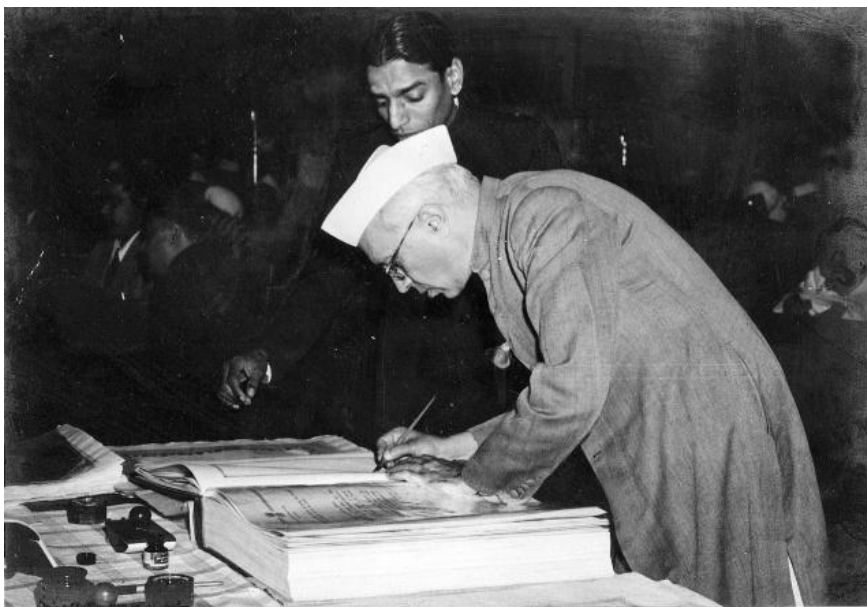
भाग्य से सौदा

-जवाहरलाल नेहरू

(संविधान सभा नई दिल्ली में 15 अगस्त 1947 को जवाहर लाल नेहरू द्वारा दिया गया एक भाषण)

बहुत वर्ष हुए हमने भाग्य से एक सौदा किया था, और अब अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने का समय आया है – पूरी तौर पर या जितनी चाहिए उतनी नहीं, फिर भी काफी हद तक। जब आधी रात के घंटे बजेंगे, जबकि सारी दुनिया सोती होगी, उस समय भारत जगकर जीवन और स्वतंत्रता प्राप्त करेगा। एक ऐसा क्षण आता है, जो कि इतिहास में कम ही आता है जबकि हम पुराने को छोड़कर नए जीवन में पग धरते हैं, जबकि एक युग का अंत होता है, जबकि राष्ट्र की चिर दलित आत्मा उद्धार प्राप्त करती है। यह उचित है कि इस गंभीर क्षण में हम भारत और उसके लोगों और उससे भी बढ़कर मानवता के हित के लिए सेवा अर्पण करने की शपथ लें।

इतिहास के उषाकाल में भारत ने अपनी अनंत खोज आरंभ की। दुर्गम सदियां उसके उद्योग, उसकी विशाल सफलता और उसकी असफलताओं से भरी मिलेंगी। चाहे अच्छे दिन आएं हों, चाहे बुरे, उसने इस खोज को आंखों से ओझल नहीं होने दिया, न उन आदर्शों को ही भुलाया जिनसे उसे शक्ति प्राप्त हुई। आज हम दुर्भाग्य की एक अवधि पूरी करते हैं, और भारत अपने आप को फिर पहचानता है। जिस कीर्ति पर हम आज आनंद मना रहे हैं, वह और भी बड़ी कीर्ति और आनेवाली विजयों की दिशा में केवल एक पग है, और आगे के लिए अवसर देने वाली है। इस अवसर को ग्रहण करने और भविष्य की चुनौती स्वीकार करने के लिए क्या हममें काफी साहस और काफी बुद्धि है?

स्वतंत्रता और शक्ति जिम्मेदारी लाती है। वह जिम्मेदारी इस सभा पर है, जो कि भारत के संपूर्ण सत्ताधारी लोगों को प्रतिनिधित्व करने वाली संपूर्ण सत्ताधारी सभा है। स्वतंत्रता के जन्म से पहले हमने प्रसव की सारी पीड़ाएं सहन की हैं और हमारे हृदय इस

दुख की स्मृति से भरे हुए हैं। इनमें से कुछ पीड़ाएं अब भी चल रही हैं। फिर भी, अतीत समाप्त हो चुका है और अब भविष्य ही हमारा आवाहन कर रहा है।

यह भविष्य आराम करने और दम लेने के लिए नहीं है बल्कि निरंतर प्रयत्न करने के लिए हैं, जिससे कि हम उन प्रतिज्ञाओं को, जो हमने इतनी बार की है और उसे जो आज कर रहे हैं, पूरा कर सकें। भारत की सेवा का अर्थ करोड़ों पीड़ितों की सेवा है। इसका अर्थ दरिद्रता और अज्ञान और अवसर की विषमता का अंत करना है। हमारी पीढ़ी के सब से बड़े आदमी की यह आकंक्षा रही है कि प्रत्येक आंख के प्रत्येक आंसू को पोंछ दिया जाए। ऐसा करना हमारी शक्ति से बाहर हो सकता है, लेकिन जब तक आंसू हैं और पीड़ा है, तब तक हमारा काम पूरा नहीं होगा।

इस लिए हमें काम करना है और परिश्रम करना है और कठिन परिश्रम करना है जिससे कि हमारे स्वप्न पूरे हों। ये स्वप्न भारत के लिए हैं, लेकिन ये संसार के लिए भी हैं, क्योंकि आज सभी राष्ट्र और लोग आपस में एक दूसरे से इस तरह गुंथे हुए हैं कि कोई भी बिल्कुल अलग होकर रहने की कल्पना नहीं कर सकता। शांति के लिए कहा गया है कि यह अविभाज्य है, स्वतंत्रता भी ऐसी ही हैं और अब समृद्धि भी ऐसी है और इस एक संसार में, जिसका कि अलग-अलग टुकड़ों में अब विभाजन संभव नहीं, संकट भी ऐसा ही है।

भारत के लोगों से, जिनके हम प्रतिनिधि हैं, हम अनुरोध करते हैं कि विश्वास और निश्चय के साथ वे हमारा साथ दें। यह क्षुद्र और विनाशक आलोचना का समय नहीं है, असद्भाव या दूसरों पर आरोप का समय नहीं है, हमें स्वतंत्र भारत की विशाल इमारत का निर्माण करना है, जिसमें कि उसकी संतान रह सकें।

महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करने की आज्ञा चाहता हूं,

यह निश्चय हो कि –

1) आधी रात के अंतिम घंटे के बाद, इस अवसर पर उपस्थित संविधान सभा के सदस्य यह शपथ लें –

इस पवित्र क्षण में, जबकि भारत के लोगों ने दुख झेलकर और त्याग करके स्वतंत्रता प्राप्त की है, मैं, जो कि भारत की संविधान सभा का सदस्य हूं, पूर्ण विनयपूर्वक भारत और उसके निवासियों की सेवा के प्रति, अपने को इस उद्देश्य से अर्पित करता हूं कि यह प्राचीन भूमि संसार में अपना उपयुक्त स्थान ग्रहण करे और संसारव्यापी शांति और मनुष्य मात्र के कल्याण के निमित्त अपना पूरा और इच्छापूर्ण अनुदान प्रस्तुत करे।

2) जो सदस्य इस अवसर पर उपस्थित नहीं है वे यह शपथ (ऐसे शाब्दिक परिवर्तनों के साथ जो कि सभापति निश्चित करें) उस समय ले जब कि वे अगली बार इस सभा के अधिवेशन में उपस्थित हों।

वो आदमी नहीं है मुकम्मल बयान है
माथे पे उस के चोट का गहरा निशान है

वो कर रहे हैं इश्क़ पे संजीदा गुफ़्तुगू
मैं क्या बताऊँ मेरा कहीं और ध्यान है

सामान कुछ नहीं है फटेहाल- है मगर
झोले में उस के पास कोई संविधान है

- दुष्यंत कुमार

संविधान के मसौदे पर प्रस्ताव

-डॉ. भीम राव अम्बेडकर

(दिनांक 4 नवम्बर 1948 भारतीय संविधान सभा में डॉ0 भीम राव अम्बेडकर ने संविधान के मसौदे पर प्रस्ताव पेश किया। इस प्रस्ताव में उन्होंने संविधान के स्वरूप संबंधी आशंकाओं, आलोचनाओं का उत्तर दिया। उनके वक्तव्य से भारतीय संविधान के स्वरूप संबंधी अनेक प्रश्नों के उत्तर मिलते हैं। भारतीय संविधान सभा में अनेक विचारधाराओं और विभिन्न पृष्ठभूमियों के व्यक्ति शामिल थे, जिनकी सक्रिय भागीदारी से संविधान के प्रावधानों पर बहुकोणिय बहस हुई और उसके फलस्वरूप संविधान बना। संविधान के जिज्ञासुओं के लिए डा. भीमराव अंबेडकर द्वारा प्रस्तुत यह प्रस्ताव बेहद महत्वपूर्ण है - सं.)

अध्यक्ष महोदय, मसविदा समिति द्वारा तय किये हुए संविधान के मसविदे को मैं सभा के सामने पेश करता हूं और प्रस्ताव करता हूं कि इस पर विचार किया जाय।

29 अगस्त, 1947 को संविधान सभा ने एक प्रस्ताव पास करके मसविदा समिति को नियुक्त किया था। संविधान सभा के निर्णय के अनुसार मसविदा समिति को यह जिम्मेदारी दी गई थी कि वह सभा द्वारा नियुक्त विभिन्न समितियों - जैसे संघ शासन समिति, संघ विधान समिति, प्रांतीय विधान समिति तथा मूल अधिकारों, अल्पसंख्यकों, एवं कबायली क्षेत्रों के लिये नियुक्त परामर्शदात्री समिति इत्यादि द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर एक संविधान तैयार करे।

संविधान सभा ने उक्त समिति को यह भी आदेश दिया था कि कुछ विषयों में वह भारत सरकार के 1935 के एक्ट में दिए हुए प्रावधानों का ही अनुगमन करे। मुझे आशा है कि सिवाय उन बातों के, जिनका हवाला मैंने 21 फरवरी सन् 1947 ई0 के अपने पत्र में दिया था, जिसमें मैंने बताया था कि मसविदा समिति ने वहां कुछ छूट ली है और क्या उसने विकल्प सुझाये हैं, आप यही पायेंगे कि मसविदा समिति ने आपके सभी आदेशों का पालन सच्चाई से किया है।

संविधान का यह मसविदा मसविदा समिति के विचार विमर्श के बाद तय हुआ है। यह एक महान् प्रलेख है। इसमें 315 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां हैं। यह मानना होगा कि किसी भी देश का संविधान इतना वृहत् नहीं है जितना कि इस संविधान का मसविदा है। जिन्होंने पूरी तरह से नहीं पढ़ा है, उनके लिए इसकी प्रमुख विशेषताओं को समझना कठिन है। आज आठ महीनों से संविधान का प्रस्तुत मसविदा देश के सामने है। इस दीर्घकाल में मित्र, आलोचक एवं विरोधी, सभी को इसमें दिये हुए प्रावधानों के प्रति अपने विचार व्यक्त करने के लिए काफी बल्कि काफी से ज़्यादा समय मिला है। मैं साफगोई से कहता हूं कि बहुतों की आलोचना का कारण यही है कि वे अनुच्छेदों को पर्याप्त रूप से समझ नहीं पाये हैं और उनके अर्थ के सम्बंध में उनको गलतफ़हमी हुई है। जो भी हो। इसकी आलोचनायें हुई हैं और उनका उत्तर देना ही होगा। उक्त दोनों कारणों से यह आवश्यक है कि इस पर विचार करने का प्रस्ताव रखते हुए मैं संविधान की मुख्य विशेषताओं की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करूं और इनके खिलाफ की हुई आलोचनाओं का जवाब दूं।

ऐसा करने से पहले मैं चाहता हूं कि संविधान सभा द्वारा नियुक्त तीन समितियों की चीफ कमिश्नर वाले प्रान्तों की समिति, संघ तथा उसकी विभिन्न इकाइयों के पारस्परिक आर्थिक सम्बंध निर्धारित करने के लिए नियुक्त विशेषज्ञ समिति एवं कबायली क्षेत्रों के लिए नियुक्त परामर्शदाता समिति की रिपोर्ट मैं सभा के सामने पेश करूं। ये रिपोर्ट इतने विलम्ब से निकली कि सभा उन पर विचार नहीं कर सकी, हालांकि इनकी प्रतियां सभा के सदस्यों के पास भेजी जा चुकी हैं। इन रिपोर्टों तथा इनमें दी हुई सिफारिशों पर मसविदा समिति विचार कर चुकी है। इसलिए यह मुनासिब है कि यह रिपोर्ट सभा के सामने औपचारिक तौर से पेश कर दी जाये। अब मैं मुख्य प्रश्न की ओर आता हूं। अगर आप इस संविधान की एक प्रति संवैधानिक कानून के किसी विद्यार्थी को दें, तो अवश्य ही वह दो बातें पूछेगा। पहली बात यह कि इस संविधान में किस प्रकार की सरकार की कल्पना की गई है और दूसरी बात यह कि संविधान का स्वरूप क्या है? ये ही दो गम्भीर विषय हैं जिनके सम्बंध में प्रत्येक संविधान को सोचना और निर्णय देना पड़ता है।

अब मैं पहले प्रश्न को लेता हूं। इस मसविदे में भारतीय संघ के प्रमुख के रूप में एक अधिकारी रखा गया है जो भारतीय संघ का प्रधान या प्रेसिडेन्ट कहलायेगा। इस अधिकारी की इस उपाधि से अमेरिका के प्रेसिडेन्ट का स्मरण हो आता है। किन्तु नामों की समानता के अतिरिक्त, अमेरिका की सरकार के स्वरूप तथा इस मसविदे में प्रस्तावित सरकार के स्वरूप में अन्य कोई समानता नहीं है। अमेरिका की सरकार का जो स्वरूप प्रेसिडेंट प्रधान है और वह प्रेसिडेंशियल सिस्टम की शासन पद्धति कही जाती है। इस मसविदे में जो शासन पद्धति प्रस्तावित की गई है, वह है पार्लियामेंटरी शासन पद्धति। शासन सम्बन्धी इन दोनों प्रणालियों में मौलिक अन्तर है। अमेरिका की प्रेसिडेंशियल पद्धति में प्रेसिडेंट शासक वर्ग का प्रधान है। शासन का समस्त अधिकार उसको प्राप्त है। इस मसविदे के अनुसार हमारे प्रेसिडेंट का वही स्थान है जो अंग्रेजी संविधान के अन्तर्गत सम्राट का है। वह राज्य का प्रधान है, किन्तु शासक वर्ग का प्रधान नहीं है। वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है, पर राष्ट्र पर शासन नहीं करता। वह राष्ट्र का प्रतीक है। शासन के मामले में उसका स्थान यही है कि वह अपनी मुहर की छाप से राष्ट्र के फैसलों को अधिसूचित करता है। अमेरिकन संविधान के अन्तर्गत प्रेसिडेंट के अधीन कई सेक्रेटरी होते हैं जो भिन्न भिन्न विभागों के अधिकारी होते हैं।

इसी प्रकार भारतीय संघ के प्रेसिडेंट के अधीन शासन के विभिन्न विभागों के अधिकारी तो मंत्री होंगे। यहां भी इन दोनों प्रणालियों में एक मौलिक अन्तर है। अमेरिका के प्रधान के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह किसी मन्त्री की सलाह माने ही। लेकिन भारतीय संघ के प्रेसिडेंट के लिए अपने मंत्रियों की सलाह मानना सामान्य तौर पर

आवश्यक होगा। वह उनकी सलाह के प्रतिकूल कुछ नहीं कर सकता और न बिना उनकी राय लिये ही कुछ कर सकता है। अमेरिका का प्रेसिडेंट किसी भी क्षण किसी भी मन्त्री को उसके पद से हटा सकता है। लेकिन भारतीय संघ के प्रेसिडेंट को ऐसा करने का अधिकार तब तक नहीं है जब तक कि पार्लियामेंट में मन्त्रियों को बहुमत प्राप्त है। अमेरिका की प्रेसिडेंशियल प्रणाली इस आधार पर रचित है कि वहां शासक वर्ग तथा संविधान मंडल में अलगाव रखा गया है, जिससे कि प्रेसिडेंट और उसके मन्त्री संसद के सदस्य नहीं हो सकते। अपना मसविदा इस अलगाव के सिद्धान्त को नहीं स्वीकार करता है। भारतीय संघ के मिनिस्टर पार्लियामेंट अर्थात् विधान मण्डल के सदस्य हैं। यहां तो केवल विधान मंडल के सदस्य ही मन्त्री हो सकते हैं। यहां मंत्रियों को वही अधिकार प्राप्त हैं जो कि विधान मण्डल के अन्य सदस्यों को प्राप्त हैं। अर्थात् वे विधान मण्डल की सभा में बैठ सकते हैं। वहां के वाद-विवाद में भाग ले सकते हैं और कार्यवाही के सम्बन्ध में अपना मत दे सकते हैं। अवश्य ही ये दोनों शासन पद्धतियां गणतंत्रीय हैं और इन दोनों में किसको चुना जाय यह तय करना आसान नहीं है।

गणतन्त्रीय शासन वर्ग के लिये यह आवश्यक है कि उसमें ये दो बातें अवश्य हों - (1) उसमें स्थिरता होनी चाहिए, और (2) उसका दायित्वपूर्ण होना नितान्त आवश्यक है। दुर्भाग्य से अब तक ऐसी कोई प्रणाली नहीं निकाली जा सकी है जिसमें स्थिरता तथा दायित्वपूर्णता के दोनों ही गुण समान रूप में पाये जा सकते हों। ऐसी प्रणाली तो आप पा सकते हैं जिसमें स्थिरता अधिक हो लेकिन दायित्व कुछ कम हो या ऐसी प्रणाली जिसमें दायित्व कुछ अधिक मात्रा में हों लेकिन स्थिरता कम हो। अमेरिका तथा स्विट्ज़रलैंड की प्रणालियों में स्थिरता अधिक है, लेकिन दायित्व कम। इसके प्रतिकूल ब्रिटिश प्रणाली में आप दायित्व अधिक पायेंगे, पर स्थिरता कम। इसका कारण स्पष्ट है। अमेरिका का कार्यपालिक वर्ग संसदीय पद्धति का नहीं है। इसलिए उसके अस्तित्व के लिए वहां की कांग्रेस (विधान मण्डल) का बहुमत अपेक्षित नहीं है। इसके प्रतिकूल ब्रिटेन का कार्यपालिक वर्ग संसदीय पद्धति का है। इसलिए अपने अस्तित्व के लिए वह संसद के बहुमत पर निर्भर करता है। अमेरिकन संसद अपने कार्यपालिक वर्ग को बरख़्वास्त नहीं कर सकती, क्योंकि वह संसदीय पद्धति का नहीं है।

संसदीय सरकार को तो उसी वक्त इस्तीफा दे देना होगा जब संसद के बहुमत का उस पर विश्वास न रह जाय। दायित्व के लिहाज से संसद के प्रति असंसदीय कार्यपालिक वर्ग कम दायित्वपूर्ण होता है, क्योंकि अपने अस्तित्व के लिए वह संसद पर निर्भर नहीं रहता। इसके प्रतिकूल संसदीय कार्यपालिका संसद के प्रति अधिक दायित्वपूर्ण होती है क्योंकि उसके अस्तित्व के लिए संसद का बहुमत अपेक्षित है। संसदीय और गैरसंसदीय पद्धतियों

में यह अन्तर है कि पहली दूसरी से अधिक दायित्वपूर्ण होती है। इसके अतिरिक्त उनके दायित्व का मापजोख कब कब किया जाय और उसे कौन करे, इस सम्बन्ध में भी दोनों में अन्तर है। गैरसंससदीय पद्धति में, जैसी अमेरिका में है, कार्यपालिक वर्ग के दायित्व का मापजोख एक नियमित काल के बाद हुआ करता है। वहां दो साल में एक बार निर्वाचक समुदाय कार्यपालिक वर्ग के दायित्व के सम्बन्ध में निर्णय करता है। उसके प्रतिकूल इंगलैंड में जहां संसदीय पद्धति चलती है, नियमित काल पर और प्रत्येक दिन दोनों तरह कार्यपालिक वर्ग के दायित्व के सम्बन्ध में निर्णय किया जाता है। दैनिक निर्णय तो संसद के सदस्य, प्रश्न, प्रस्ताव, अविश्वास प्रस्ताव, स्थगन प्रस्ताव तथा अभिभाषणों पर वाद विवाद द्वारा करते हैं। नियमित काल पर जो निर्णय होता है, वह निर्वाचक चुनाव के समय करते हैं जो कि हर पांचवें साल या उससे पूर्व भी हो सकता है। अमेरिकन शासन पद्धति में कार्यपालिक वर्ग के दायित्व की दैनिक छानबीन नहीं होती। लोगों का अनुभव है कि भारत जैसे देश में कार्यपालिक वर्ग के दायित्व की दैनिक छानबीन बहुत ही आवश्यक है और एक नियतकालीन छानबीन से वह कहीं अधिक प्रभावी है। प्रस्तुत संविधान में स्थिरता से दायित्व को अधिक आवश्यक समझा गया है और इसीलिए इसमें संसदीय पद्धति की सिफारिश की गयी है।

यहां तक तो मैंने यह बतलाया कि प्रस्तुत संविधान में कौन सी शासन पद्धति रखी गई है। अब मैं दूसरे प्रश्न की ओर आता हूं, अर्थात् संविधान के स्वरूप की ओर। अब तक इतिहास में संविधान के दो ही मुख्य स्वरूप आये हैं। एक है एकात्मक (यूनिटरी) और दूसरा संघात्मक (फेडरल)। एकात्मक विधान में दो मुख्य विशेषतायें होती हैं। एक तो यह कि केन्द्रीय शासन नीति की उसमें प्रधानता रहती है और दूसरी विशेषता उसकी यह होती है कि उसमें सहायक या पूरक सार्वभौमिक नीतियों का कोई अस्तित्व नहीं होता। इसके प्रतिकूल फेडरल संविधान की विशेषता यह है कि केन्द्र के साथ-साथ उसमें सत्तात्मक उपराज्य भी होते हैं और दोनों को ही अपने अपने क्षेत्रों में जो उनको सौंपे गये हैं, पूर्ण सत्ता प्राप्त रहती है। दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिए कि फेडरल संविधान का अर्थ है दोहरी राज्य स्थापना। प्रस्तुत संविधान इस अर्थ में फेडरल संविधान है कि यह ऐसी राज्य व्यवस्था स्थापित करता है जिसे हम दोहरी राज्य व्यवस्था कह सकते हैं। प्रस्तुत संविधान की दोहरी राज्य व्यवस्था के अन्दर संघ राज्य तथा अन्य प्रादेशिक राज्य हैं और इन दोनों को ही संप्रभुता प्राप्त है जिसका प्रयोग ये संविधान द्वारा सौंपे गये अपने अपने विषयों में कर सकते हैं। यह दोहरी राज्य व्यवस्था अमेरिकन संविधान से मिलती जुलती है। अमेरिका की राज्य व्यवस्था भी एक दोहरी राज्य व्यवस्था है जिसमें एक तरफ तो संघ सरकार है और दूसरी तरफ कई राज्य हैं। इसी तरह हमारे संविधान में भी एक केन्द्रीय संघ

सरकार तथा अन्य प्रादेशिक राज्यों की व्यवस्था है। अमेरिकन संविधान के अनुसार, वहां की संघ सरकार, वहां के राज्यों का केवल फेडरेशन नहीं है और न वहां के प्रादेशिक राज्य ही संघ सरकार की महज शासन सम्बन्धी इकाइयां हैं। इसी प्रकार इस संविधान में प्रस्तावित संघ सरकार न केवल राज्यों का संघ मात्र है और न विभिन्न प्रादेशिक राज्य ही संघ सरकार की केवल शासनात्मक इकाइयां हैं। भारतीय और अमेरिकन संविधान की समरूपता इन्हीं बातों तक सीमित है। पर इन दोनों संविधानों में जो अन्तर है, वह उनकी समानताओं से कहीं अधिक मौलिक और सुस्पष्ट है।

अमेरिकन संघ तथा भारतीय संघ में जो विभिन्नता है, वह मुख्यतया दो बातों में है। अमेरिका में दोहरी राज्य व्यवस्था के साथ-साथ दो प्रकार की नागरिकता भी है। एक तो अमेरिकन नागरिकता है और दूसरी राज्यों को भी अपनी-अपनी नागरिकता है। अवश्य ही उस दो प्रकार की नागरिकता में जो कठिनाइयां हैं, उनको अमेरिकन संविधान के 14 वें संशोधन द्वारा बहुत कुछ दूर कर दिया गया है। इस संशोधन द्वारा राज्यों पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया गया है कि वे अमेरिकन संघ के नागरिकों के अधिकार, विशेषाधिकार या विमुक्तियों का अपहरण नहीं कर सकते। लेकिन साथ ही यह भी है, जैसा कि विलियम एन्डरसन ने बताया है, कि कतिपय राजनीतिक विषयों में जिनमें मतदान का तथा सरकारी ओहदों के धारण करने का अधिकार भी शामिल है, राज्य अपने नागरिकों के पक्ष में भेदभाव की नीति जरूर बरतते हैं। बहुत से मामलों में तो यह पक्षपात बहुत दूर तक बरता जाता है। उदाहरणार्थ, किसी राज्य या स्थानीय सरकार में नियुक्ति पाने के लिए, बहुत से स्थानों में, यह जरूरी कर दिया गया है कि उम्मीदवार वहां का ही नागरिक या निवासी हो। इसी तरह कानून और चिकित्सा सम्बन्धी सार्वजनिक पेशों का लाइसेंस पाने के लिए भी राज्य की नागरिकता या निवास प्रायः आवश्यक है। इसी प्रकार व्यवसाय में भी जैसे कि मदिरा की बिक्री का काम या बांड या स्टाक की बिक्री का काम, जहां सरकारी नियमों की कठोरता जरूरी होती है, यही प्रतिबंध लागू हैं। प्रत्येक राज्य को उन मामलों में जो उसको सौंपे गये हैं, अपने नागरिकों को विशेष सुविधा प्रदान करने के लिये भी कतिपय अधिकार प्राप्त हैं। इस प्रकार शिकार करना और मछली मारना ये दोनों ही बातें एक तरह से राज्यों के अधिकार में हैं। वहां राज्यों में यह प्रचलित है कि वे शिकार खेलने और मछली मारने के लाइसेंस के लिए जो फीस अपने नागरिकों से लेते हैं, उससे कहीं ज्यादा बाहरी लोगों से लेते हैं। इसी प्रकार राज्य अपने कॉलेज और विश्वविद्यालयों के शुल्क भी बाहर वालों से ज्यादा लेते हैं और अपने अस्पतालों या आश्रय स्थलों में भी केवल अपने नागरिकों को ही भर्ती करते हैं। आकस्मिक या संकटकालीन स्थिति में राज्य बाहरी लोगों को भी वहां भर्ती कर लेते हैं। सारांश यह है कि कई ऐसे अधिकार हैं जो वहां के राज्य

केवल अपने नागरिकों या निवासियों को ही देते हैं और जिन्हें वह बाहर वालों को देने से कानूनन इन्कार कर सकते हैं, और करते हैं अथवा उनके अधिकारों को वे बाहर बाहर वालों को ज्यादा सख्त शर्तों पर ही देते हैं। ये सुविधाएं जो राज्य के नागरिकों को प्राप्त होती हैं, राज्य की नागरिकता के विशेषाधिकार हैं। इन सब बातों को देखते हुए, कहना होगा कि वहां राज्य के नागरिकों के एवं बाहरी लोगों के अधिकारों में बड़ा अन्तर है। यात्रियों और अस्थायी प्रवासियों को वहां हर जगह कुछ न कुछ विशेष असुविधाओं का शिकार होना ही पड़ता है।

इसके प्रतिकूल प्रस्तुत संविधान में द्विस्तरीय राज्य व्यवस्था तो रखी गई है लेकिन नागरिकता एक ही है। इसमें समस्त भारत के लिये एक ही नागरिकता की व्यवस्था है, और वह है भारतीय नागरिकता। प्रादेशिक राज्यों की पृथक नागरिकता नहीं है। प्रत्येक भारतीय को चाहे वह किसी भी प्रादेशिक राज्य का हो, नागरिकता का समान अधिकार प्राप्त है। प्रस्तुत भारतीय संविधान में जो द्विस्तरीय राज्य व्यवस्था रखी गई है, वह अमेरिका की दोहरी व्यवस्था से एक और तरह से भी भिन्न है। अमेरिका की संघ सरकार तथा राज्यों के संविधान आपस में एक ढीली गांठ से बंधे हुए हैं। इन दोनों के परस्पर सम्बंध को बताते हुए ब्राइस ने कहा हैः ''अमेरिका की केन्द्रीय या राष्ट्रीय सरकार तथा वहां की प्रादेशिक सरकारों की तुलना हम एक विशाल इमारत तथा अन्य छोटी-छोटी अनेक इमारतों से कर सकते हैं जो बनी तो हैं विशाल इमारत की आधार भूमि पर ही, लेकिन स्पष्ट तथा अलग अलग भिन्न हैं।''

केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारों में विभिन्नता का आभास निम्नलिखित बातों से मिलेगा।

(1)इस शर्त के अधीन रहते हुए कि वे गणतंत्रीय सरकार की स्थापना करेंगी, अमेरिका के प्रत्येक राज्य को अपना संविधान बनाने की स्वतंत्रता है।

(2)अपना संविधान बदलने का अधिकार वहां के प्रदेशों की जनता के हाथ में है और इस मामले में राष्ट्रीय सरकार का उन पर कोई अंकुश नहीं है। यहां मैं फिर ब्राइस के शब्दों को उद्धृत करूंगा। ''अमेरिका के प्रत्येक राज्य का अस्तित्व, उसके संविधान के अनुसार एक कॉमनवेल्थ के रूप में है और राज्य के कानून, प्रबंध तथा न्याय सम्बंधी सभी प्राधिकारी, राज्य संविधान की प्रजा हैं और उसी संविधान के अधीन हैं।''

प्रस्तावित भारतीय संविधान में यह बात नहीं है। यहां तो किसी भी प्रादेशिक राज्य को (भाग 1 में उल्लिखित राज्यों को तो बिलकुल ही) अपना संविधान बनाने का अधिकार नहीं है। संघ एवं प्रादेशिक राज्यों के संविधान का एक ही ढांचा है जिसके अन्दर ही दोनों को काम करना है और वे उसके बाहर नहीं जा सकते।

यहां तक तो मैंने आपका ध्यान इस बात की ओर आकर्षित किया कि अमेरिकन संघ और भारतीय संघ में अन्तर क्या है। किन्तु इसके अतिरिक्त प्रस्तावित भारतीय संघ में कुछ ऐसी भी विशेषतायें हैं जो अमेरिकन संघ में ही नहीं बल्कि दुनिया के अन्य किसी भी संघ राज्य में नहीं है। अमेरिकन संघ तथा अन्य सभी संघ राज्यों का संविधान एक ऐसे कठोर फेडरेशन ढांचे में रखा गया है कि वे अपने स्वरूप को कभी बदल नहीं सकते चाहे कैसी भी परिस्थिति क्यों न हो। किसी भी हालत में इनकी राज्य व्यवस्था एकात्मक या केन्द्र प्रधान नहीं हो सकती। इसके प्रतिकूल हमारा संविधान समय, परिस्थिति एवं आवश्यकता के अनुसार एकात्मक या फेडरल दोनों ही प्रकार का हो जा सकता है। यह इस प्रकार का है कि साधारण समय में राज्य व्यवस्था फेडरल पद्धति पर चलाई जा सकती है। किन्तु युद्ध काल में, प्रस्तुत संविधान इस प्रकार का बना है कि, राज्य व्यवस्था केन्द्रात्मक पद्धति पर चलाई जा सकती है। ज्यों ही (प्रेसिडेन्ट) उक्त आशय की घोषणा करेगा, जिसका कि उसे प्रस्तुत संविधान के अनुच्छेद 275 के अनुसार अधिकार है। हमारी समस्त राज्य व्यवस्था फेडरल से बदलकर तुरन्त एकात्मक बन जायेगी। घोषणा द्वारा भारतीय संघ, अगर वह चाहे तो ये अधिकार स्वयं अपने हाथ में ले सकता है। (1) किसी भी विषय पर कानून बनाने का अधिकार चाहे वह विषय प्रादेशिक सूची में ही हो। (2) प्रादेशिक राज्यों के लिए, इस बात के सम्बन्ध में आदेश जारी करने का अधिकार, कि वे उन मामलों में जो उनके सुपुर्द हैं, अपनी कार्यपालिक शक्ति का प्रयोग किस प्रकार करें। (3) किसी प्राधिकारी को किसी भी प्रयोजन के लिये शक्ति प्रदान करने का अधिकार, तथा (4) संविधान में प्रावधानित वित्तीय व्यवस्थाओं का स्थगन का अधिकार। संघात्मक राज्य व्यवस्था को बदलकर केन्द्रात्मक बनाने का अधिकार किसी भी संघ राज्य को नहीं है। हमारे संविधान के अन्दर प्रस्तावित संघ राज्य में तथा अन्य संघ राज्यों में जो विभिन्नता है उसके सम्बन्ध में एक बात तो यह हुई। किन्तु भारतीय संघ में तथा अन्य संघ राज्यों में विभिन्नता केवल इसी एक बात की नहीं है।

फेडरल राज्य पद्धति के सम्बन्ध में कहा जाता है कि, वह अगर बिलकुल जीर्णशीर्ण नहीं तो एक कमजोर व्यवस्था ज़रूर है। कहा जाता है कि उसमें दो कमजोरियां हैं। एक कमजोरी तो यह है कि उसमें बड़ी सख्ती तथा दूसरी कानूनी झंझटें हैं। यह निर्विवाद है कि फेडरल राज्य व्यवस्था में ये दोनों त्रुटियां स्वाभाविक हैं। फेडरल संविधान स्वाभाविक है कि, लिखित संविधान होगा और लिखित संविधान की अपरिवर्तनशीलता निश्चित है। संघात्मक विधान में सत्ता संघ सरकार और राज्यों के बीच बंट जाती है और इस बटवारे का निर्धारण स्वयं संविधान के कानून द्वारा होता है। इस सत्ता विभाजन के फलस्वरूप दो बातें निश्चित हैं। एक तो यह कि अगर संघ सरकार उन मामलों में हस्तक्षेप करे जिनके

सम्बन्ध में सत्ता राज्यों को प्राप्त है अथवा कोई राज्य उन मामलों में हस्तक्षेप करे जिनके सम्बन्ध में सत्ता संघ सरकार को प्राप्त है तो यह संविधान का उल्लंघन करना है और दूसरी बात यह है कि ऐसे उल्लंघन के सम्बन्ध में न्याय सम्बन्धी कार्रवाई की जा सकती है और इसके सम्बन्ध में निर्णय केवल न्यायपालिका ही दे सकती है। संघ व्यवस्था का जब यह स्वरूप है तो फेडरल संविधान कानूनी पेचीदगियों के दोषारोपण से नहीं बच सकता। फेडरल संविधान की ये त्रुटियां अमेरिकन संविधान में सुस्पष्ट हैं।

जिन देशों ने बाद में चलकर फेडरल पद्धति अपनाई है, उन्होंने उस प्रणाली में अंतर्निहित अपरिवर्तनशीलता एवं वैचारिक विभिन्नताओं के फलस्वरूप पैदा होने वाले दोषों को सीमित करने की कोशिश की है। उदाहरण के रूप में आस्ट्रेलियन संविधान का यहां उल्लेख किया जा सकता है। अपनी फेडरल व्यवस्था की अपरिवर्तनशीलता को कम करने के लिए आस्ट्रेलियन संविधान ने इन उपायों का प्रबंध किया हैः (1) संविधान ने कॉमनवेल्थ की संसद को समवर्ती विधायन की व्यापक शक्ति प्रदान की है और पृथक विधि निर्माण की सीमित शक्ति ही प्रदान की है, और (2) संविधान के कतिपय अनुच्छेदों को अल्पकालिक अवधि का बना दिया है और वे तभी तक प्रभावी रहेंगे जब तक कि संसद अन्यथा व्यवस्था न करे। यह स्पष्ट है कि आस्ट्रेलियाई संविधान के अनुसार वहां की संसद बहुत से काम कर सकती है जो अमेरिकन कांग्रेस की क्षमता से बाहर की बात है और जिन्हें करने के लिए अमेरिकन सरकार को सुप्रीम कोर्ट का ही सहारा लेना होगा और वहां भी उसे सफलता तभी मिल सकती है जब कि वह अपनी योग्यता और बुद्धि कौशल से ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन कर सके जो उस मामले में उसके अधिकार प्रयोग का औचित्य प्रमाणित करता हो।

फेडरल व्यवस्था की तुलनात्मक अपरिवर्तनशीलता एवं विचार बहुलता की कठिनाई को कम करने के लिये प्रस्तुत संविधान ने आस्ट्रेलियन प्रणाली को अपनाया है और इतनी दूर तक जहां तक स्वयं आस्ट्रेलिया भी नहीं गया है। आस्ट्रेलियन संविधान की तरह अपने संविधान में भी उन विषयों की सूची बड़ी लम्बी है जिनके सम्बन्ध में विधायन का समवर्ती अधिकार है। आस्ट्रेलियन विधान में ऐसे 39 विषय हैं और प्रस्तुत संविधान में इनकी संख्या 37 है। आस्ट्रेलियन विधान का अनुगमन करते हुए हमने अपने विधान में भी 6 ऐसे अनुच्छेद रखे हैं जिनमें दी हुई व्यवस्थाएं अल्पकालिक अवधि की हैं। जिनके स्थान पर किसी भी समय विधान मण्डल अवसर के अनुकूल अन्य व्यवस्थाएं रख सकता है। प्रस्तुत संविधान आस्ट्रेलियन संविधान से भी जिस बात में आगे बढ़ गया है, वह यह है कि अपने विधान मण्डल को कई विषयों में विधि निर्माण का एकमात्र अधिकार प्राप्त है। जब कि आस्ट्रेलियन संसद का विधि निर्माण का एकमात्र अधिकार केवल तीन विषयों

तक ही सीमित है, भारतीय विधान मण्डल को, प्रस्तुत संविधान के अनुसार, ऐसा अधिकार 91 विषयों के सम्बन्ध में प्राप्त है। इस प्रकार प्रस्तुत संविधान ने अपनी संघात्मक राज्य व्यवस्था को, जो स्वभावतः बेलोच मानी जाती है, अधिक से अधिक लचीली बना दिया है। यही कहना काफी नहीं है कि प्रस्तुत संविधान ने आस्ट्रेलियन संविधान का अनुगमन किया है या यह कि बड़े व्यापक पैमाने पर उसका अनुगमन किया है। इसमें जो विशेष बात है वह यह है कि, संघात्मक व्यवस्था की आंतरिक त्रुटि-अपरिवर्तनशीलता और विचार बाहुल्यता को दूर करने के लिए इसने नवीन उपाय निकाले हैं और यह विशेषता उसकी अपनी है और अन्यत्र कहीं नहीं पाई जा सकती।

पहला उपाय यह है कि संविधान ने संसद को यह अधिकार दिया है कि वह सामान्य समय में प्रादेशिक विषयों के लिए प्रावधानित विषयों में भी विधि निर्माण कर सकता है। मेरा इशारा है संविधान के अनुच्छेद 226, 227 तथा 229 की ओर। अनुच्छेद 226 के अनुसार किसी विषय के सम्बन्ध में यद्यपि वह ''राज्य सूची'' में है, संघीय विधान मण्डल विधि निर्माण कर सकता है, जब कि वह विषय केवल प्रादेशिक महत्व का न रह कर राष्ट्रीय महत्व का हो जाय। लेकिन इस सम्बन्ध में शर्त यह है कि फेडरल विधान मण्डल ऐसे विषय के सम्बन्ध में विधायन तभी कर सकता है जब कि राज्यसभा दो तिहाई बहुमत से इसके पक्ष में प्रस्ताव पास कर दे। अनुच्छेद 227 में राष्ट्रीय संकट की स्थिति के लिए संघीय विधान मंडल को इसी प्रकार का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 229 के अनुसार यदि प्रदेश इस बात से सहमत हों तो यही अधिकार संघीय विधान मण्डल को प्राप्त है। यह अंतिम प्रावधान आस्ट्रेलियन संविधान में भी अवश्य है लेकिन ऊपर वाले दोनों प्रावधान भारतीय संविधान के मसविदे की अपनी मुख्य विशेषता हैं।

फेडरल संविधान की अपरिवर्तनशीलता और उसकी विचार बाहुल्यता को दूर करने का दूसरा उपाय जो इस संविधान में अपनाया गया है, वह यह है कि संविधान में सुविधापूर्वक संशोधन करने के प्रावधान रखे गये हैं। संशोधन सम्बन्धी प्रावधान संविधान के अनुच्छेदों को दो विभिन्न भागों में बांट देते हैं। एक भाग में वे अनुच्छेद आते हैं जिनका सम्बन्ध, विधि निर्माण सम्बन्धी शक्तियों का केन्द्र और राज्यों के बीच बंटवारा, संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व तथा न्यायालयों के अधिकारों से है। दूसरे सभी अनुच्छेद दूसरे भाग में आते हैं। संविधान का एक बड़ा हिस्सा, दूसरे भाग में आने वाले अनुच्छेदों के तहत आ जाता है और संघीय विधान मण्डल द्वारा दोहरे बहुमत से उसमें संशोधन किया जा सकता है अर्थात् प्रत्येक संसद के उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से तथा प्रत्येक सभा की समस्त सदस्य संख्या के बहुमत से उसमें संशोधन किया जा सकता है। इन अनुच्छेदों में किये गये संशोधनों के लिए राज्यों का

अनुमोदन अपेक्षित नहीं है। जो अनुच्छेद पहले भाग में आते हैं, केवल उन्हीं से सम्बन्ध रखने वाले संशोधनों के लिए ही संरक्षण के रूप में राज्यों का अनुमोदन आवश्यक रखा गया है। इसलिए निश्चिंतता के साथ यह कहा जा सकता है कि भारतीय संघ को अपरिवर्तनशीलता और विधिक विचार बाहुल्यता की त्रुटियों से कोई कठिनाई नहीं होगी। इसकी मुख्य विशेषता यही है कि यहां की फेडरल व्यवस्था लचीली होगी।

प्रस्तावित भारतीय संघ की एक और विशेषता है जिसके कारण यह अन्य फेडरल से भिन्न है। फेडरल राज्य का आधार है दोहरी राज्य व्यवस्था, जिनके बीच विधि निर्माण, शासन प्रबन्ध एवं न्याय सम्बन्धी समस्त अधिकार बंटे रहते हैं। इस अधिकार विभाजन का अनिवार्य परिणाम यह होता है कि कानून, शासन एवं न्याय के सम्बन्ध में राज्य में एकरूपता नहीं रहती, विभिन्नता पैदा हो जाती है। इस विभिन्नता की किसी हद तक तो अनदेखी हो सकती है। बल्कि किसी हद तक वह स्वागतयोग्य भी हो सकती है, क्योंकि उसमें स्थानीय आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुसार शासन करती शक्तियों को उपयोगी बनाने का प्रयास किया जाता है। लेकिन जब यह विभिन्नता एक निश्चित सीमा से आगे चली जाती है, तो उससे अव्यवस्था पैदा हो जा सकती है, और कई संघ राज्यों में इससे अव्यवस्था उत्पन्न हुई भी है। फर्ज़ करें हमारे संघ में 20 प्रादेशिक राज्य हैं। अब आप ज़रा कल्पना करें कि हमारे यहां विवाह, तलाक़, सम्पत्ति सम्बन्धी उत्तराधिकार, पारिवारिक सम्बन्ध, संविदा, अपकृत्य या अपराध, मापतौल बिल और चेक, बैंकिंग और व्यवसाय न्याय पाने की पद्धतियां तथा शासन सम्बन्धी पद्धति एवं व्यवस्था के सम्बन्ध में 20 भिन्न-भिन्न कानून हैं। तो यह विभिन्नता कितनी असुविधाजनक है। यह स्थिति न केवल राज्य को ही कमजोर बनाती है, बल्कि यह नागरिकों के लिए असह्य हो जाती है। वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचते हैं। तो यह पाते हैं कि पहले स्थान पर जो वैध था, वह यहां अवैध है। इस मसविदे ने ऐसे उपाय और प्रणालियों का प्रावधान किया है जिनसे भारतीय राज्य संघात्मक राज्य होने के साथ साथ, उन सभी मामलों में, एकरूपता रखेगा, जो राज्य की एकता को स्थिर रखने के लिए आवश्यक है। इस प्रयोजन के लिए मसविदे में निम्नलिखित तीन उपाय अपनाये गये हैं:

(1)राज्य भर में एकल न्यायपालिका।

(2)मूल विधियों तथा व्यवहार एवं दण्ड सम्बन्धी विधियों में एकरूपता, और

(3)महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति के लिए समस्त देश में एक लोकसेवा।

संघात्मक राज्य में द्विमुखी राज्य व्यवस्था का होना निश्चित है और ऐसी द्विमुखी राज्य व्यवस्था के अन्दर न्याय, विधि संहिता तथा लोक सेवा इन तीनों में दोहरेपन का आना, जैसा मैं पहले बता चुका हूं, स्वाभाविक है। अमेरिका में संघीय न्यायालय तथा

राज्यों के न्यायालय दोनों एक दूसरे से पृथक और स्वतंत्र हैं। भारतीय संघ में द्विमुखी राज्य व्यवस्था तो है, लेकिन उसमें न्याय व्यवस्था दो प्रकार की नहीं होगी। इसमें एकरूपता ही रहेगी। विभिन्न उच्च न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय दोनों संयुक्त रूप में एक अखण्ड अविभाज्य न्यायालय हैं जिन्हें संवैधानिक विधि, व्यवहार विधि एवं दण्ड विधि से सम्बन्ध रखने वाले सभी मामलों में सुनवाई का तथा व्यवस्था देने का अधिकार रहेगा। ऐसा इसलिए किया गया है कि न्यायालयों के फैसलों में उनकी व्यवस्थाओं में विभिन्नता न रहे। कनाडा एकमात्र ऐसा देश है, जहां ऐसी समानान्तर व्यवस्था है। आस्ट्रेलिया की व्यवस्था केवल इसके निकट तक पहुंच पाती है। इस बात का प्रयास किया गया है कि कानूनों में जो कि नागरिक और सामुदायिक जीवन के आधार हैं, कोई विषमता नहीं रहने पाए। व्यवहार एवं दण्ड विधि संहिता को - अर्थात व्यवहार एवं दण्ड सम्बन्धी विधियों को - जैसे कि दीवानी और फौजदारी के कानून, एवं साक्ष्य, सम्पत्ति हस्तान्तरण, विवाह, तलाक़ तथा उत्तराधिकार सम्बन्धी कानूनों को समवर्ती सूची में रखा है, जिससे कि फेडरल प्रणाली को बिना कोई क्षति पहुंचाए, इन सभी बातों में एकरूपता रखी जा सके।

द्विमुखी राज्य व्यवस्था में, जो फेडरल शासन पद्धति का आंतरिक अंग है, जैसे मैं कह चुका हूं, सभी संघीय व्यवस्थाओं में दोहरापन होना स्वाभाविक है। सभी फेडरल राज्यों में संघीय लोक सेवा तथा राज्यों की लोक सेवा, ये दो सेवाएं होती हैं। भारतीय संघ में भी, यद्यपि यहां भी द्विमुखी राज्य व्यवस्था है, दो ही सेवाएं होंगी, लेकिन उसमें एक अपवाद है। यह मानी हुई बात है कि सभी देशों में शासन सम्बन्धी कितने ही ऐसे पद होते हैं जो, शासन स्तर को समुन्नत रखने के विचार से बहुत महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं। इतनी विशाल और जटिल शासन व्यवस्था में ऐसे कौन-कौन से ओहदे हैं - यह बताना तो आसान नहीं है, लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि शासन स्तर उन राजकीय कर्मचारियों की योग्यता पर ही निर्भर करता है जो इन महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किए जाते हैं। सौभाग्य से हमने अपनी पूर्ववर्ती सरकार से ऐसी शासन पद्धति हासिल की है, जो पूरे देश में एक सी है और हमें यह मालूम है कि वह महत्वपूर्ण पद कौन-कौन से हैं। प्रस्तुत संविधान में इस बात की व्यवस्था है कि राज्यों को अपनी लोक सेवा की रचना के अधिकार से वंचित न करते हुए एक अखिल भारतीय लोक सेवा रखी जायगी, जिसमें समस्त देश से समान योग्यता के व्यक्तियों को समान वेतनमान पर भरती किया जायगा और इस लोक सेवा के सदस्य ही समूचे संघ में सभी महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किए जाएंगे। अपने प्रस्ताविक संघ की मुख्य विशेषताएं यही हैं, जिनका मैंने पहले उल्लेख किया है।

अब मैं उन आलोचनाओं की ओर आता हूं, जो इसके सम्बन्ध में की गई हैं। यह कहा गया है कि संविधान के इस मसविदे में कोई भी नई बात नहीं है। इसमें से करीब आधा तो भारत सरकार के सन् 1935 के एक्ट से ही लेकर ज्यों का त्यों रख दिया गया है और शेष विभिन्न देशों के संविधान से लिया गया है। इसमें अपनी मौलिकता बहुत कम है। मैं पूछना चाहता हूं विश्व के इतिहास में मौजूदा समय में जो संविधान बनाया जायगा उसमें आखिर कोई क्या नई बात हो सकती है? आज करीब एक सदी से कुछ अधिक समय बीत गया, विश्व का पहला लिखित संविधान बना था। तब से इसी प्रथम संविधान के आधार पर बहुत से देश अपने अपने संविधान का निर्माण करते आ रहे हैं। संविधान के दायरे में क्या क्या बातें आनी चाहिए। यह बात बहुत पहले तय हो चुकी है। इसी प्रकार सारी दुनिया में यह बात भी मान ली जा चुकी है, स्वीकार कर ली गयी है कि संविधान की बुनियादी बातें क्या हैं। इन सर्वसम्मत सिद्धान्तों के आधार पर जो भी संविधान बनेंगे उनमें मुख्य मुख्य प्रावधानों के सम्बन्ध में निश्चित ही समानता होगी। इस युग में, इतने विलम्ब से जो संविधान बनेगा उसमें अगर किसी नई बात का समावेश किया जा सकता है तो वह केवल इसी अभिप्राय से किया जा सकता है कि प्राचीन संविधानों की त्रुटियों को दूर कर उसे देश की वर्तमान आवश्यकता के अनुरूप बनाया जाय। प्रस्तुत संविधान अन्य देशों के संविधानों की केवल नकल मात्र है, इस आरोप का निश्चय ही यही कारण है कि आलोचकों का संविधान विषयक अध्ययन अपर्याप्त है। मैं यह बतला चुका हूं कि अपने संविधान के मसविदे में नई बात क्या है और मुझे विश्वास है कि जिन लोगों ने अन्य देशों के संविधानों का अध्ययन किया है, और इस विषय पर तटस्थ होकर, शान्त चित्त होकर, विचार करने के लिए तैयार हैं, वे यह मानेंगे कि मसविदा समिति पर कदापि यह दोषारोपण नहीं किया जा सकता है कि संविधान निर्माण में उसने आंख बंद कर गुलामों की भांति दूसरे विधानों की नकल की है जैसा कि उसके विरुद्ध कहा जाता है।

इस अभियोग के सम्बन्ध में कि इस मसविदे में भारत सरकार के 1935 के एक्ट का ही एक वृहत अंश रख दिया गया है, मुझे क्षमाप्रार्थी होने की कोई जरूरत नहीं। कहीं से भी कोई चीज़ ली जाय, इसमें शर्मिन्दा होने का कोई कारण नहीं है। यह कोई साहित्यिक चोरी नहीं है। संविधान की बुनियादी बातों के लिए किसी व्यक्ति को भी एकाधिपत्य नहीं हासिल है। मुझे दुख इस बात का है कि भारत सरकार के 1935 के एक्ट से जो प्रावधान लिये गये हैं, अधिकांशतः उनका सम्बन्ध प्रशासन के ब्यौरों से है। मैं मानता हूं कि संविधान में शासन सम्बन्धी ब्यौरों का कोई उल्लेख नहीं होना चाहिए। स्वयं मुझे बड़ी प्रसन्नता होती अगर मसविदा समिति ऐसा मार्ग निकाल पाती जिससे संविधान में ये बातें नहीं शामिल की जातीं। लेकिन जरूरत के मुताबिक इन्हें शामिल करना ही पड़ा और

उनको संविधान में रखने का यही औचित्य है। ग्रीस के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता ग्रोट ने कहा है: ''किसी भी स्वतन्त्र और शान्तिपूर्ण सरकार के लिए यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है कि वैधानिक नैतिकता का प्रसार केवल वहां के बहुसंख्यक लोगों में न हो बल्कि देश के समस्त नागरिकों में किया जाय, क्योंकि कोई भी शक्तिशाली और दुःसाध्य, हठी अल्पमत वाला वर्ग, चाहे वह स्वयं इतना शक्ति सम्पन्न न हो कि शासन की बागडोर अपने हाथ में ले सके, लेकिन स्वतन्त्र-शासन का कार्य संचालन दुरूह या कठिन तो बना ही सकता है।"

वैधानिक नैतिकता से ग्रोट का अभिप्राय यह है: ''संविधान के स्वरूपों के प्रति ऐसी परम श्रद्धा हो जो उन स्वरूपों के अधीन रखकर और उनके अन्तर्गत कार्य करने वाले प्राधिकारियों की आज्ञाओं को मनवाती हो, लेकिन साथ ही निश्चित विधिक प्रतिबंधों के तहत भाषण तथा कार्य स्वातंत्र्य की वृत्ति पैदा करती हो और साथ-साथ उन्हीं प्राधिकारियों के लोक कार्यों के बारे में अबाधित आलोचना की सुविधा देती हो और इसके साथ ही प्रत्येक नागरिक के मन में यह विश्वास भी पैदा करती हो कि दल संघर्षजनित कटुता के होते हुए भी संविधान के स्वरूपों के प्रति उसके विरोधियों के हृदय में वही आदर होगा जो उसके हृदय में है।"

इस बात को हर व्यक्ति स्वीकार करता है कि जनतंत्रीय संविधान को शांतिपूर्वक चलाने के लिए नैतिकता का प्रसार आवश्यक है, किन्तु इससे परस्पर सम्बद्ध दो बातें हैं जिन्हें दुर्भाग्य से लोग नहीं जानते। उनमें एक तो यह है कि शासन पद्धति का संविधान की पद्धति से बड़ा नजदीकी रिश्ता है। शासन पद्धति का स्वरूप संविधान पद्धति के अनुरूप होना चाहिये। दूसरी बात यह है कि संविधान के स्वरूप को बदले बिना ही, केवल शासन प्रणाली में परिवर्तन करके संविधान को पूरी तौर पर उलट देना, तथा शासन को संविधान की भावना के अनुरूप और प्रतिकूल बना देना बिलकुल सम्भव है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि केवल वहीं पर जहां लोगों में वैधानिक नैतिकता का प्रसार है जैसा कि उपरोक्त इतिहासवेत्ता ने बताया है, इस बात की जोखिम उठाई जा सकती है कि शासन के विस्तार की बातों को संविधान में न रख कर उन्हें विधान मण्डल पर छोड़ दिया जाए। अब प्रश्न यह है कि क्या संवैधानिकता और नैतिकता को आपस में जज्ब होना सम्भव मानते हैं? संवैधानिक नैतिकता की भावना स्वाभाविक या प्रकृतिजन्य नहीं होती। इसे तो उगाना पड़ता है। हमें यह जानना चाहिए कि हमारे देशवासियों को अभी भी यह सीखना है। भारत भूमि स्वभावतः ही अप्रजातंत्रात्मक है, और यहां प्रजातंत्र केवल एक ऊपरी आवरण है। ऐसी परिस्थिति में शासन सम्बन्धी नियमों को निश्चित करने का काम विधान मण्डल पर नहीं छोड़ना ही श्रेयस्कर है। यही कारण है कि प्रस्तुत संविधान में इन नियमों को स्थान दे दिया गया है।

इस मसविदे के विरुद्ध दूसरी आलोचना यह की गई है कि इसमें कहीं भी भारत की प्राचीन राजनीति को कोई स्थान नहीं दिया गया है। यह कहा जाता है कि इस नवीन संविधान का निर्माण प्राचीन हिन्दू राज्य परम्परा के आधार पर होना चाहिए था और इसमें पश्चिमी राजनीतिक सिद्धान्तों का समावेश न कर, ग्राम और जिला पंचायतों की बुनियाद पर इसे खड़ा करना चाहिए था। कुछ ऐसे लोग भी हैं जिनकी विचारधारा बहुत आगे, अति की ओर चली गई है। वे कोई भी केन्द्रीय या प्रान्तीय शासन नहीं चाहते। वे चाहते हैं कि भारत में केवल ग्राम सरकारें हों। बुद्धिसम्पन्न भारतीयों का ग्राम समाज के प्रति जो प्रेम है, वह यदि कारुणिक नहीं तो दयनीय अवश्य ही है। (हंसी) इस मनोवृत्ति का बहुत कुछ कारण तो यह है कि मेटकाफ ने जो ग्राम समाज का स्तुतिगान किया है, उससे वे प्रभावित हैं। मेटकाफ ने ग्रामों का वर्णन करते हुए कहा है कि वे छोटे-छोटे प्रजातंत्र थे, जिनमें अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुएं उपलब्ध थीं और जो वैदेशिक सम्बंध स्थापित करने से प्रायः मुक्त थे। मेटकाफ की राय यह है कि सभी क्रान्तियों एवं परिवर्तनों में, जिनसे कि यहां की जनता को कष्ट भोगना पड़ा, भारतीय जनसमुदाय की रक्षा में और कोई भी बात उतनी सहायक नहीं हुई है जितना कि इन ग्राम पंचायतों का अस्तित्व जो छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्यों के रूप में विद्यमान थे, और उनकी राय के मुताबिक ये ग्राम पंचायतें बहुत हद तक भारतीयों के सुख एवं उनके स्वातंत्र्य उपभोग में सहायक रही हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि जहां और सभी कुछ नष्ट हो गए, हमारा ग्राम समुदाय आज भी वर्तमान है। लेकिन जो लोग इन ग्रामों पर गर्व करते हैं, वे इस बात का विचार ही नहीं करते कि आखिर देश के भाग्य निर्माण में तथा उसके कार्यकलाप में इन ग्रामों ने कितना कम हाथ बटाया है और क्यों?

देश के भाग्य निर्माण में इन्होंने क्या भाग लिया है। इसका अच्छा वर्णन भी मेटकाफ ने स्वयं किया है। वह कहता है: ''कितने ही राजवंश आए और गये, कितनी ही क्रांतियां हुईं, हिन्दू, पठान, मुगल, मराठा, सिख, अंग्रेज-सभी बारी-बारी से देश के मालिक बने, किन्तु यहां की ग्राम पंचायतें सदा ज्यों की त्यों बनी रहीं। जब जब युद्ध हुए, संकट आए, इन्होंने अपने को हथियार बन्द किया, अपनी किलेबन्दी की। विरोधी सेना जब इनके प्रदेश में पहुंची तो इन्होंने अपने मवेशियों को चार दीवारी में इकट्ठा कर दिया और शत्रु को बिना रोके आगे बढ़ जाने दिया।'' हमारी ग्राम पंचायतों ने देश के इतिहास में यही ज्वलंत काम किया है। इसे जानते हुए हमें उनके लिए आखिर क्या गर्व हो सकता है। यह बात सच हो सकती है कि भयंकर उथल-पुथल के होते हुए भी ये जीवित रह गयीं। लेकिन केवल जीवित रहने का क्या मूल्य है? प्रश्न तो यह है कि किस स्तर पर ये जीवित रहीं? निश्चय ही बड़े निम्न और मतलबपरस्त स्तर पर ये जीवित रहीं। मेरा मत है कि ये ग्राम पंचायतें ही

भारत की बर्बादी का कारण रही हैं। इसलिए मुझे आश्चर्य होता है कि जो लोग प्रान्तीयता की, साम्प्रदायिकता की निन्दा करते हैं, वही ग्रामों की इतनी प्रशंसा कर रहे हैं। हमारे ग्राम हैं क्या? ये कूप मण्डूकता के परनाले हैं, अज्ञान, संकीर्णता एवं साम्प्रदायिकता की काली कोठरियां हैं। मुझे तो प्रसन्नता है कि विधान के मसविदे में ग्राम को अलग फेंक दिया गया है और व्यक्ति को राष्ट्र का अंग माना गया है।

विधान के मसविदे की इसलिए भी आलोचना की गई है कि इसमें अल्पसंख्यकों के संरक्षण की व्यवस्थाएं रखी गयी हैं। इसके लिए मसविदा समिति जिम्मेदार नहीं है। इसे तो संविधान सभा के निर्णयों के अनुसार चलना था। जहां तक मेरे निजी मत की बात है, मैं कह सकता हूं कि संविधान-सभा ने अल्पसंख्यकों के संरक्षण की व्यवस्था करके अवश्य ही बुद्धिमानी का काम किया है। इस देश के बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक दोनों ही वर्ग एक गलत रास्ते पर चले हैं। बहुसंख्यक वर्ग की यह गलती है कि उसने अल्पसंख्यक वर्ग का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया, और इसी प्रकार अल्पसंख्यक वर्ग की यह गलती है कि उसने अपने को सदा के लिए अल्पसंख्यक बनाये रखा। अब एक ऐसा मार्ग निकालना ही होगा जिससे ये दोनों गलतियां दूर हों। मार्ग ऐसा होना चाहिए जो अल्पसंख्यकों का अस्तित्व मान कर इस सम्बन्ध में आगे बढ़े और साथ ही मार्ग ऐसा भी हो जिससे कि एक दिन अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक दोनों ही वर्ग, आपस में मिलजुल कर एक हो जाएं। इस सम्बन्ध में संविधान सभा ने जो उपाय रखा है, वह निस्सन्देह अभिनन्दनीय है, क्योंकि इससे हमारे उपरोक्त दोनों ही उद्देश्य सिद्ध हो जाते हैं। दो बातें मैं उन कट्टर प्राचीनपंथियों को कहना चाहता हूं, जिन्होंने अल्पसंख्यकों के संरक्षण के विरुद्ध एक हठधर्मिता का भाव अपना लिया है। एक बात उनसे यह कहना चाहता हूं कि अल्पसंख्यक एक भयंकर विस्फोटक पदार्थ के समान होते हैं, जो अगर फटा तो सारे राजकीय ढांचे को तहस नहस कर सकता है। यूरोप का इतिहास इस बात का एक ज्वलंत उदाहरण है। दूसरी बात मैं यह कहना चाहता हूं कि भारत का अल्पसंख्यक समुदाय इस बात पर सहमत हो गया है कि वह अपने अस्तित्व को बहुसंख्यक समुदाय को सौंप दे। आयरलैंड का विभाजन रोकने के लिए जो बातचीत चली थी उसके सिलसिले में रेडमांड ने कारसन से यह कहा था ''प्रोटेस्टेंट अल्पसंख्यकों के लिए आप जो भी संरक्षण चाहते हों मांग लें, किन्तु आयरलैंड को हमें अखण्ड रखना चाहिए।'' इसके जवाब में कारसन ने कहा था ''चूल्हे में जाएं आपके संरक्षण, हम आपसे शासित होना नहीं चाहते।'' भारत के किसी भी अल्पसंख्यक समुदाय ने यह रुख नहीं अपनाया है। उन्होंने बहुसंख्यक समुदाय के शासन को निष्ठापूर्वक स्वीकार कर लिया है। यहां का बहुसंख्यक वर्ग सम्प्रदाय के आधार पर बहुसंख्यक है, न कि किसी राजनैतिक सिद्धान्त के आधार पर। बहुसंख्यक वर्ग का यह

फर्ज है कि अल्पसंख्यकों के प्रतिकूल वह कोई भेदभाव न बरते। बहुसंख्यक वर्ग को अपने इस फर्ज का ख्याल रखना चाहिए। अल्पसंख्यक वर्ग इसी प्रकार अपना पृथक अस्तित्व बनाये रहेगा या अपने को राष्ट्र में समाहित कर देगा। यह बात निर्भर करती है बहुसंख्यक वर्ग के व्यवहार पर। जिस क्षण बहुसंख्यक वर्ग अल्पसंख्यकों के प्रति भेदभाव बरतने की आदत छोड़ देगा, उसी क्षण अल्पसंख्यकों के अस्तित्व का आधार जाता रहेगा और वे लुप्त हो जायेंगे।

सर्वाधिक आलोचना हुई है विधान के मसविदे के उस भाग की जिसमें मूल अधिकारों का उल्लेख है। कहा जाता है कि अनुच्छेद 13 में, जिसमें मूल अधिकारों की व्याख्या की गई है, इतने अधिक प्रतिबंध रख दिये गए हैं कि इनके कारण मूल अधिकारों का कोई अर्थ नहीं रह जाता। इसकी इतनी निन्दा की गई है कि इसे एक प्रकार का छल कहा गया है। आलोचकों की राय में मूल अधिकार तब तक मूल अधिकार नहीं हैं, जब तक कि वे सर्वथा सम्पूर्ण तथा प्रतिबन्धशून्य न हों। अपने मत के समर्थन में आलोचकगण अमेरिका के संविधान का तथा उस संविधान के प्रथम दस संशोधनों में दिये हुये अधिकार पत्र का सहारा लेते हैं। यह कहा गया है कि अमेरिका के मूल अधिकार, जो कि अधिकार पत्र (बिल ऑफ राइट) में दिये गए हैं, वास्तविक हैं, क्योंकि उन्हें किसी प्रतिबंध के अधीन नहीं रखा गया है। मुझे दुख के साथ कहना पड़ता है कि मूल अधिकारों के सम्बन्ध में की गई यह सारी आलोचना एक मिथ्या धारणा के आधार पर की गई है। पहली बात तो यह है कि मूल एवं गैरमूल अधिकारों में क्या अन्तर होना चाहिये। इस प्रसंग में जो आलोचना की गई है, वह तथ्यपूर्ण नहीं है। यह कहना गलत है कि मूल अधिकार सर्वथा संपूर्ण प्रतिबंधशून्य होते हैं और अन्य अधिकार अबाध नहीं होते। इन दोनों में वास्तविक अन्तर यह है कि मूल अधिकार कानून की देन हैं, जब कि अन्य अधिकार विभिन्न दलों के पारस्परिक समझौते के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। चूंकि मूल अधिकार राज्य की देन हैं, इसलिये राज्य उनके सम्बन्ध में कोई प्रतिबंध नहीं रख सकता, ऐसा अर्थ लगाना भूल है।

दूसरी बात यह है कि अमेरिका के मूल अधिकार अबाध हैं, यह कहना गलत है। अमेरिकन संविधान में तथा प्रस्तुत संविधान में केवल स्वरूप का अन्तर है, आशय का नहीं। यह बात निर्विवाद है कि अमेरिका के जो मूल अधिकार हैं, वे अबाध नहीं हैं। अपने संविधान के मसविदे में मूल अधिकारों के सम्बन्ध में जो प्रतिबंध रखे गये हैं, उनमें से प्रत्येक के समर्थन में अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के कम से कम एक निर्णय का हवाला तो दिया ही जा सकता है। इस मसविदे के अनुच्छेद 13 में दिये हुए वाक्-स्वतंत्रता सम्बंधी अधिकार पर जो प्रतिबन्ध रखा गया है उसके औचित्य के सम्बंध में अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय का एक निर्णय उद्धृत कर देना यहां काफी है। गिटलो बनाम न्यूयार्क के

मुकदमे में राज विप्लव के लिये दण्ड से सम्बंध रखने वाली न्यूयार्क की एक विधि की वैधानिकता का प्रश्न उपस्थित था। उक्त विधि के अनुसार ऐसे भाषण जो भयंकर उथल-पुथल और परिवर्तन उपस्थित करते हों, दण्डनीय थे। इस मुकदमे में फैसला देते हुये सर्वोच्च न्यायालय ने कहा थाः ''यह लम्बे समय से सुस्थापित एक मौलिक सिद्धान्त है कि संविधान द्वारा भाषण एवं प्रकाशन सम्बन्धी जो स्वतंत्रता प्राप्त है, उससे किसी को यह अधिकार नहीं मिलता है कि वह बिना दायित्व के जो चाहे कहे या प्रकाशित करे और न उससे उस बात का अबाध अनियंत्रित अधिकार मिलता है कि लोग स्वतंत्र होकर चाहे जैसी भाषा का व्यवहार करें और इस स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने के कारण ये दण्ड के भागी नहीं होंगे।'' इसलिए यह कहना गलत है कि अमेरिका में जो मौलिक अधिकार प्राप्त हैं, वे तो सम्पूर्ण हैं, पर इस मसविदे में जो मौलिक अधिकार दिये गये हैं, वे सम्पूर्ण नहीं हैं।

यह तर्क किया जाता है कि अगर मूल अधिकारों के सम्बन्ध में कोई प्रतिबंध अपेक्षित है, तो संविधान में ही उस प्रतिबंध का उल्लेख होना चाहिए, जैसा कि अमेरिका के संविधान में किया गया है और अगर संविधान में इन प्रतिबंधों का उल्लेख नहीं किया जाता है, तो फिर इस बात को न्यायपालिका पर छोड़ देना चाहिये कि सभी आवश्यक बातों पर विचार कर वही प्रतिबंधों को सुनिश्चित करे। मुझे दुख के साथ कहना पड़ता है कि इस प्रकार के तर्कों से लोग अमेरिकन संविधान के सम्बन्ध में यदि अपनी अज्ञानता नहीं प्रकट करते हैं, तो उसका गलत स्वरूप अपने सामने रखते हैं। अमेरिकन संविधान में ऐसी कोई भी बात नहीं है, केवल एक बात को छोड़ कर, यानी असेम्बली के अधिकार के सिवा मूल अधिकारों के सम्बंध में जिनकी अमेरिकन नागरिकों को प्रत्याभूति (गारंटी) प्राप्त है, अमेरिकन संविधान ने कोई भी प्रतिबन्ध नहीं लगा रखा है। और न यही कहना सही है कि मूल अधिकारों के सम्बंध में प्रतिबंध रखने का काम अमेरिकन विधान ने न्यायपालिका पर छोड़ दिया है। प्रतिबंध लागू करने का अधिकार वहां कांग्रेस को प्राप्त है। वहां वास्तविक स्थिति उससे भिन्न है जो कि हमारे आलोचकों ने मान रखी है। अमेरिका में संविधान ने जो मूल अधिकार दिये थे, वे अवश्य ही पहले तो अबाध थे, पर शीघ्र ही कांग्रेस को इस बात का आभास मिल गया कि इन मूल अधिकारों के सम्बंध में प्रतिबंध रखना नितान्त आवश्यक है। जब वहां सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष इन प्रतिबंधों की वैधानिकता का प्रश्न खड़ा हुआ, तो यह तय पाया गया कि संविधान द्वारा अमेरिका की कांग्रेस को इन प्रतिबंधों को लगाने का कोई अधिकार नहीं प्राप्त है, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने ''पुलिस-अधिकार'' के सिद्धान्त का आविष्कार किया और मूल अधिकार को अबाध मानने वाली विचारधारा का खण्डन इस तर्क द्वारा किया कि प्रत्येक राज्य को पुलिस अधिकार स्वतः प्राप्त रहता है और यह आवश्यक नहीं है कि स्पष्ट उल्लेख द्वारा

संविधान यह अधिकार उसे प्रदान करे। उक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा थाः ''इस बात के सम्बन्ध में कोई प्रश्न नहीं किया जा सकता है कि राज्य अपने पुलिस अधिकार के प्रयोग में उन व्यक्तियों को दण्ड दे सकता है, जो इस स्वतंत्रता का दुरुपयोग ऐसे भाषणों द्वारा करते हैं, जो जनहित के खिलाफ हैं, जनता के नैतिक स्तर को गिराते हैं, अपराध को उत्तेजना देते हैं और लोकशान्ति को बाधा पहुंचाते हैं।'' इस सम्बन्ध में अपने संविधान ने जो किया है, वह यह है कि बजाय इसके कि वह मूल अधिकारों को प्रतिबंधशून्य रखे और संसद बचाव के लिये अपने सर्वोच्च न्यायालय पर निर्भर करे कि वह ''पुलिस-अधिकार'' जैसे किसी सिद्धान्त का आविष्कार कर उसका बचाव करेगा, उसने मूल अधिकारों के सम्बन्ध में प्रतिबंध लागू करने का अधिकार सीधे राज्य को दे दिया है। इन दोनों ही तरीकों से परिणाम में कोई अन्तर नहीं आता। एक प्रत्यक्ष रूप से प्रतिबंध लागू करता है और दूसरा परोक्ष रूप से, किन्तु इन दोनों में से किसी में भी मूल अधिकार सर्वथा अबाध नहीं है।

संविधान के इस मसविदे में मूल सिद्धान्तों के बाद ही ''निदेशात्मक सिद्धान्त'' रखे गए हैं। ये सिद्धान्त संसदीय प्रजातंत्र के लिये निर्मित संविधान की एक उल्लेखनीय विशेषता हैं। संसदीय प्रजातंत्र के लिए निर्मित अन्य संविधानों में केवल आयरिश स्वतंत्र राज्य के संविधान में ही ये सिद्धान्त रखे गये हैं। इन निदेशात्मक सिद्धान्तों की भी आलोचना हुई है। यह कहा गया है कि ये सिद्धान्त केवल पवित्र घोषणा के ही रूप में हैं। इनमें दायित्व आरोपित करने की शक्ति नहीं है। निश्चय ही यह आलोचना व्यर्थ और अनावश्यक है। स्वयं संविधान में यह बात कई शब्दों में कही गई है। अगर यह कहा जाए कि इन निदेशात्मक सिद्धान्तों के पीछे कानून की कोई शक्ति नहीं है, तो मैं इसे मानने को तैयार हूं। किन्तु यह मानने को मैं कदापि तैयार नहीं हूं कि दायित्व आरोपित करने की इनमें कोई शक्ति है ही नहीं और न मैं यही मानने को तैयार हूं कि चूंकि इनके पीछे कोई कानूनी शक्ति नहीं है, इसलिये ये व्यर्थ हैं। ये निदेशात्मक सिद्धान्त उस आदेश-पत्र (निर्देशावली) के समान हैं जो कि 1935 के ऐक्ट के अन्तर्गत, ब्रिटिश सरकार भारत के गवर्नर जनरल और उपनिवेशों तथा भारत के गर्वनरों को जारी करती थी। इस मसविदे में प्रधान को तथा गर्वनरों को ऐसा आदेश पत्र जारी करने की बात रखी गई है। इन आदेश पत्रों की इबारत आप को विधान की चौथी अनुसूची में मिलेगी। ***जिसे हम निदेशात्मक सिद्धान्त कहते हैं, वह वस्तुतः आदेश पत्र का ही एक दूसरा नाम है। अन्तर केवल इतना है कि ये सिद्धान्त विधान मण्डल एवं कार्यपालिक वर्ग के नाम जारी किये गए आदेश हैं।*** मैं तो समझता हूं कि ऐसी व्यवस्था अभिनन्दनीय होनी चाहिए। जहां भी शान्ति व्यवस्था एवं उम्दा शासन के लिए बिना किसी विशेष उल्लेख के अधिकार दिये

जाते हैं, यह जरूरी होता है कि इन अधिकारों के इस्तेमाल के नियमन के लिए साथ में आदेश अवश्य हो। संविधान में ऐसे आदेशों को शामिल करना जैसे कि प्रस्तुत संविधान में प्रस्तावित हैं, एक और कारण से उचित हो जाता है। संविधान का मसविदा, जिस रूप में है, देश के शासन के लिए केवल एक व्यवस्था मात्र बना देता है। यह किसी दल विशेष को अधिकाररूढ़ करा देने की योजना नहीं है, जैसा कि कुछ देशों में किया गया है। अधिकाररूढ़ कौन हो, इस बात का निर्णय जनता पर छोड़ दिया गया है और ऐसा ही होना चाहिए। यदि प्रजातंत्र की कसौटी पर इस व्यवस्था को सही उतारना है। इस व्यवस्था से यह होगा कि चाहे जो भी अधिकाररूढ़ हो जाय, किन्तु संविधान को लेकर वह मनमानी नहीं कर सकता। इसके इस्तेमाल में उसे इन आदेश पत्रों का जिन्हें हमने निदेशात्मक सिद्धान्त कहा है, आदर करना ही होगा। वह उनकी उपेक्षा कर नहीं सकता। हो सकता है कि इनको भंग करने के लिए उसे किसी अदालत के सामने जवाब न देना पड़े, किन्तु चुनाव के समय निर्वाचकों के समक्ष उसे निश्चित ही इसका जवाब देना होगा। इन निदेशात्मक सिद्धान्तों का कितना बड़ा महत्व है। इस बात का और सही आभास तब मिलेगा जब सही शक्तियां अधिकाररूढ़ होने का प्रयास करेंगी।

यह कहना कि इनमें दायित्व आरोपित करने की शक्ति नहीं है, संविधान में इनको रखने के विरुद्ध कोई तर्क नहीं है। संविधान में ये किस स्थल पर रखे जाएं, इस सम्बन्ध में तो मतभेद हो सकता है। मैं यह मानता हूं कि यह बात कुछ असंगत मालूम पड़ती है कि ऐसी व्यवस्थाएं या धाराएं जो प्रतिबंधमूलक नहीं है, वे उन धाराओं के साथ रख दी जाएं, जो प्रतिबंध आरोपित करती हों। मेरे विचार से उनका सही स्थान है अनुसूची 3 ए और 4 में, जिनमें प्रेसिडेंट तथा गवर्नरों के लिए आदेश पत्र दिये गए हैं। यह इसलिए कि, जैसा मैंने कहा है, ये वस्तुतः कार्यपालिक वर्ग एवं विधान मण्डलों के लिए उस हेतु आदेश पत्र है कि वे अपने अधिकारों का प्रयोग किस प्रकार करें। किन्तु इसे कहां रखा जाए, यह तो उपक्रम से सम्बन्ध रखने वाली बात है।

कुछ आलोचकों ने यह कहा है कि केन्द्र बहुत मजबूत हो गया है। औरों ने यह कहा कि इसे और भी मजबूत बनाना चाहिए। विधान के मसविदे में संतुलन का, बीच का, रास्ता अपनाया गया है। चाहे आप जितना चाहें, केन्द्र को अधिक अधिकार न दिए जाएं, लेकिन केन्द्र को मजबूत होने से रोकना कठिन है। मौजूदा संसार में हालात ऐसे हैं कि शक्तियों का केन्द्रीयकरण आवश्यक हो गया है। इस सम्बंध में अमेरिका की संघ सरकार के विकास पर विचार करना होगा। यह संघ सरकार, बावजूद इस बात के कि संविधान ने इसे बड़ी सीमित शक्तियां प्रदान की थीं, आज अपने मूल स्वरूप से कहीं अधिक बड़ी हो गई है और वहां की प्रादेशिक सरकारों पर बिलकुल छा गई है। आधुनिक परिस्थितियों के

कारण ऐसा हुआ है। यही परिस्थितियां भारत सरकार पर भी निश्चय ही अपना असर डालेंगी और हमारा कोई भी प्रयास केन्द्र को मजबूत होने से नहीं रोक सकता। दूसरी तरफ केन्द्र को और ज्यादा प्रबल बनाने की जो प्रवृत्ति है, उसे हमें दबाना ही होगा। उतने से अधिक यह भोजन नहीं कर सकता, जितने को वह पचा सकता है। इसकी शक्ति इसके भार और गुरुत्व के अनुपात में ही होनी चाहिए। अगर हम इसे इतना प्रबल बना दें कि वह अपने ही भार से गिर जाए, तो यह मूर्खता होगी।

इस मसविदे की आलोचना इस बात के लिये भी की गई है कि इसमें केन्द्र और प्रदेशों के बीच एक प्रकार के वैधानिक सम्बंध की व्यवस्था है। परन्तु केन्द्र और रियासतों के बीच एक दूसरे प्रकार के वैधानिक सम्बन्ध की। रियासतें संघ सूची में दिए हुए विषयों की सम्पूर्ण अनुसूची को मानने के लिये बाध्य नहीं है। रक्षा, वैदेशिक मामले, एवं यातायात के अन्तर्गत आने वाले विषयों को ही मानने के लिए ही वे बाध्य हैं। समवर्ती सूची में दिये हुए विषयों को मानने के लिये वे बाध्य नहीं हैं। इस मसविदे में दी हुई राज्य सूची को भी मानने को वे बाध्य नहीं हैं। उन्हें इस बात की स्वतंत्रता है कि वे अपनी संविधान सभा का निर्माण करके अपना संविधान खुद बनाएं। अवश्य ही यह सभी बातें दुखद हैं और मैं मानता हूं कि इनके पक्ष में कुछ नहीं कहा जा सकता। यह विभेद राज्य की कार्यक्षमता के लिये संकटप्रद सिद्ध हो सकता है। जब तक यह विभेद वर्तमान है, अखिल भारतीय मामलों पर केन्द्र का अधिकार सम्भवतः, प्रभावशाली न हो, क्योंकि अगर अधिकार का प्रयोग सभी मामलों में और सर्वत्र न किया जा सके, तो दरअसल वह अधिकार ही नहीं है। युद्ध की स्थिति होने पर कुछ इलाकों में अत्यावश्यक अधिकारों के भी प्रयोग पर ऐसे प्रतिबंधों के कारण राज्य का जीवन ही सर्वथा संकटग्रस्त हो सकता है। इससे भी बुरी बात यह है कि इस मसविदे में रियासतों को अपनी सेना रखने की अनुमति दी गई है। मैं इस व्यवस्था को बड़ा ही हानिकर और इतिहास के उलट समझता हूं, जो भारत की एकता को ही छिन्न भिन्न कर सकता है और केन्द्र सरकार को उलट सकता है। अगर मैं मसविदा समिति के विचार को रखने में गलती नहीं कर रहा हूं, तो इस व्यवस्था से वह बिलकुल ही सन्तुष्ट नहीं थी। उसके सदस्य बहुत चाहते थे कि प्रान्तों और रियासतों का केन्द्र से जो वैधानिक सम्बन्ध हो, उसमें एकरूपता हो। किन्तु दुर्भाग्य से इस मामले में सुधार के लिये वे कुछ भी नहीं कर सके। वे संविधान सभा के निर्णयों से बंधे थे और संविधान सभा उस समझौते से बंधी थी, जो दोनों निगोशियेटिंग कमेटियों के बीच तय पाया था।

लेकिन इस सम्बन्ध में जर्मनी में जो हुआ, उससे हम साहस प्राप्त कर सकते हैं। जर्मन साम्राज्य, जैसा कि बिस्मार्क ने 1870 ई0 में स्थापित किया था, एक संयुक्त राज्य था,

जिसमें 25 इकाइयां थीं। इन 25 राज्यों में 22 तो राजतंत्रीय थे और बाकी 3 गणतंत्रीय नगर-राज्य थे। यह विभेद, जैसा कि हम सबों को ही मालूम है, कालान्तर में चलकर विलुप्त हो गया और समूचा राज्य एक हो गया और सभी निवासी एक हो गए और समस्त राज्य का शासन एक संविधान के आधीन होने लगा। भारतीय रियासतों के एकीकरण का काम उससे भी शीघ्र समाप्त होने जा रहा है, जितने समय में कि जर्मनी में यह काम हुआ था। 1947 की 15 अगस्त को यहां 600 रियासतें थीं। और आज इन रियासतों के प्रान्तों में मिल जाने से अथवा इनके अपने अपने संघ बना लेने या केन्द्र द्वारा उन्हें केन्द्र शासित क्षेत्र बना देने से इनकी संख्या केवल 20/30 तक रह गई है, जो अपने पांव पर खड़ी हो सकती हैं। यह प्रगति बड़ी तेज़ है। जो रियासतें रह गई हैं, उनसे मैं अपील करता हूं कि वे भारतीय प्रान्तों के स्तर पर आ जाएं और उन्हीं की तरह भारतीय संघ का पूर्णतः अंग बन जाएं। ऐसा करके वे भारतीय संघ को वह बल देंगी, जिसकी इसे आवश्यकता है। ऐसा करने से वे अपनी अपनी संविधान सभाओं का निर्माण करने तथा अपना अपना अलग संविधान बनाने के झंझट से बच जाएंगी और उनके लाभ की किसी भी बात में उन्हें कोई हानि नहीं उठानी होगी। मुझे आशा है कि मेरी अपील व्यर्थ नहीं जाएगी और अपने संविधान के पास होने से पहले ही हम प्रान्तों और रियासतों में जो अन्तर है, उसे दूर कर देंगे।

कई आलोचकों ने, मसविदे के अनुच्छेद 1 में भारत को, जो राज्यों का संघ बताया गया है, उस वर्णन पर आपत्ति की है। यह कहा जाता है कि इस सम्बन्ध में सही शब्दावली होनी चाहिए, 'राज्यों का फेडरेशन' यह सच है कि दक्षिण अफ्रीका जो एकात्मक राज्य है, उसे संघ कहा जाता है। किन्तु कनाडा को भी संघ ही कहा जाता है, पर है वह एक फेडरेशन। इस तरह भारत को संघ कहने से यद्यपि उसका विधान संघात्मक है, प्रचलित शब्दावली पर कोई चोट नहीं पड़ती है। परन्तु इस सम्बन्ध में महत्व की बात तो यह है, कि संघ शब्द का प्रयोग जानबूझ कर किया गया है। कनाडा के संविधान में उसे 'संघ'' क्यों कहा गया है। यह तो मैं नहीं जानता, पर मसविदा समिति ने इस शब्द का प्रयोग क्यों किया है। यह मैं जरूर बता सकता हूं। मसविदा समिति इस बात को स्पष्ट करना चाहती थी कि यद्यपि भारत एक फेडरेशन बनने जा रहा है, पर यह किसी ऐसे समझौते के फलस्वरूप नहीं बन रहा है, जिससे प्रादेशिक राज्यों ने फेडरेशन में सम्मिलित हो जाना स्वीकार किया हो। उक्त समिति यह भी स्पष्ट कर देना चाहती थी कि चूंकि फेडरेशन किसी ऐसे समझौते के आधार पर नहीं बन रहा है, इसलिये किसी भी राज्य को फेडरेशन से अलग होने का अधिकार नहीं है। यह फेडरेशन एक संघ है। इसलिये कि वह विनष्ट नहीं हो सकता। यद्यपि शासन की सुविधा के लिये इस देश को और यहां के निवासियों को

अलग-अलग राज्यों में बांटा जा सकता है, किन्तु सब मिलाकर देश एक है। इसके निवासी एक हैं और एक शासन के अधीन हैं, जिसको समस्त अधिकार एक ही सूत्र से प्राप्त हुए हैं। अमेरिकावासियों को इस सिद्धान्त को स्थापित करने के लिये कि राज्यों को संघ से अलग होने का कोई अधिकार नहीं है और संघ अविनाश्य है, गृह युद्ध करना पड़ा था। मसविदा समिति ने यही मुनासिब समझा कि शुरू में ही इसे स्पष्ट कर दिया जाए, ताकि भविष्य में इसके सम्बन्ध में कोई विवाद या अटकलबाजी का सवाल न उठे।

विधान के मसविदे के आलोचकों ने इसके उन प्रावधानों को जिनका सम्बन्ध संविधान के संशोधन से है, बड़ी ही तीव्र आलोचना की है। यह कहा गया है कि मसविदे के इन प्रावधानों से संविधान में संशोधन करना बड़ा कठिन हो गया है। यह सुझाया गया है कि ऐसा प्रावधान रखना चाहिए कि कम से कम कुछ वर्षों तक साधारण बहुमत द्वारा

संविधान में संशोधन किया जा सके। यह तर्क विलक्षण और चातुर्यपूर्ण है। कहा जाता है कि संविधान सभा प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर नहीं चुनी गई है, जब कि भविष्य का विधान मंडल प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर चुना जाएगा, किन्तु फिर भी संविधान सभा को साधारण बहुमत द्वारा संविधान स्वीकार करने का अधिकार प्राप्त है। विधान मंडल को यही अधिकार नहीं दिया गया है। इस बात का चारों ओर से शोर मचाया जाता है कि मसविदे की असंगत बातों में यह एक है। मैं इस दोषारोपण का खण्डन करता हूं, क्योंकि यह बिलकुल निराधार है। संविधान में संशोधन से सम्बन्ध रखने वाले प्रस्तुत मसविदे के प्रावधान कितने सहज हैं, यह जानने के लिये हमें आस्ट्रेलिया एवं अमेरिका के संविधानों के संशोधन सम्बधी प्रावधानों को देखना काफी है। इनकी तुलना में वे प्रावधान जो हमारे संविधान में रखे गये है, बहुत ही सरल हैं। रूढ़ि या जनमत-संग्रह द्वारा इस सम्बन्ध में

निर्णय किया जाय, इस विस्तृत और कठिन पद्धति को अपने विधान के मसविदे से हटा दिया गया है। संविधान में संशोधन करने का अधिकार केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान मण्डलों को दिया गया है। विशेष विषयों के सम्बन्ध में ही - और इसकी संख्या बहुत ही कम है - रियासती विधान-मण्डलों का अनुमोदन अपेक्षित रखा गया है। विधान के अन्य सभी अनुच्छेदों के सम्बन्ध में संशोधन का अधिकार संसद अर्थात केन्द्रीय विधान मण्डल को दिया गया है। इस सम्बन्ध में एक मात्र प्रतिबन्ध यह रखा गया है कि प्रत्येक सभा के वर्तमान एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से तथा प्रत्येक सभा की सम्पूर्ण सदस्य संख्या के बहुमत से स्वीकृत होने पर ही संशोधन ग्राह्य होगा। संविधान में संशोधन करने का इससे भी कोई सरल प्रावधान हो सकता है, इसका अनुमान करना कठिन है।

संशोधन सम्बन्धी प्रावधानों की कई बातों को जो असंगत कहा गया है, इसका कारण यह है कि संविधान सभा की स्थिति तथा प्रस्तुत विधान के आधीन चुनी जाने वाली भावी संसद की स्थिति को ठीक ठीक नहीं समझा गया है। प्रस्तुत संविधान के निर्माण के पीछे संविधान सभा की कोई संकुचित दलबंदी की भावना नहीं है। एक सुन्दर और सुचारू रूप से व्यवहृत होने योग्य संविधान बनाना ही इस सभा का उद्देश्य है और इसके अतिरिक्त इसे कोई अपना विशेष अभिप्राय नहीं सिद्ध करना है। संविधान के अनुच्छेदों पर विचार करते समय इनकी दृष्टि इस बात पर नहीं थी कि किसी विशेष प्रावधान को पास कराया जाए। भावी संसद अगर संविधान सभा के रूप में समवेत हुई, तो इसके सदस्य वहां दलबन्दी की भावना से ही कार्य करेंगे और संविधान में ऐसे संशोधन पास करना चाहेंगे, जिनसे वे अपने दल के उन प्रावधानों को स्वीकार करा सकें, जिन्हें संसद से मंजूर कराने में वे इस कारण असमर्थ रहे कि संविधान का कोई अनुच्छेद उनकी राह में बाधक होता था। संसद का तो अपना विशेष मकसद होगा, जिसे वह सिद्ध करना चाहेगी, पर संविधान सभा को अपना कोई विशेष अभिप्राय सिद्ध नहीं करना है। संविधान सभा में तथा भावी संसद में यही अन्तर है। यही मुख्य कारण है कि संविधान सभा, यद्यपि वह सीमित मताधिकार के आधार पर चुनी गई है, साधारण बहुमत द्वारा संविधान पास करे, इस पर तो हम भरोसा कर सकते हैं, पर संसद को साधारण बहुमत द्वारा विधान में संशोधन करने का अधिकार दिया जाय, इस पर हमें चिन्ता हो जाती है, यद्यपि वह प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर निर्वाचित होगी।

मसविदा समिति द्वारा तय किए हुए संविधान के मसविदे के विरुद्ध जो भी आलोचनाएं हुई हैं, उन सबका, मैं समझता हूं, मैंने जवाब दे दिया। मैं नहीं समझता कि ऐसी किसी भी आवश्यक आलोचना का उत्तर देना अभी बाकी रह गया है जो कि गत

आठ महीनों के अन्दर हुई हो, जब से कि संविधान जनता के सम्मुख आया है। यह निर्णय करना अब संविधान सभा का काम है कि वह मसविदा समिति द्वारा तय किए संविधान को ही स्वीकार करेगी या इसमें परिवर्तन करके इसे स्वीकार करेगी।

इस सम्बन्ध में मैं एक बात अवश्य कहना चाहता हूं कि भारत के कई प्रान्तीय विधान मण्डलों में संविधान पर बहस हुई है और सोच विचार किया गया है। बम्बई, मध्यप्रान्त, पश्चिमी बंगाल, बिहार, मद्रास एवं पूर्वी पंजाब के विधान मण्डलों ने इस पर बहस और विचार किया है। यह सच है कि कई प्रान्तीय विधान मण्डलों ने संविधान की अर्थ सम्बन्धी व्यवस्थाओं पर गम्भीर आपत्ति की है, तथा मद्रास ने इसके अनुच्छेद 226 के सम्बन्ध में किसी भी प्रान्तीय विधान मण्डल ने कोई विशेष आपत्ति नहीं की है। कोई भी संविधान सर्वथा पूर्ण नहीं हो सकता और इसके अलावा स्वयं मसविदा समिति ने उसे और अच्छा बनाने के लिए कई संशोधनों का सुझाव रखा है। पर प्रान्तीय विधान मण्डलों में इसके सम्बन्ध में जो बहस हुई है, उसके आधार पर मैं यह कहने का साहस कर सकता हूं कि प्रस्तुत संविधान, जैसा कि मसविदा समिति ने इसे स्थिर किया है, इस देश के कार्यारम्भ के लिए काफी अच्छा है। मैं ऐसा समझता हूं कि प्रस्तुत संविधान व्यवहार योग्य है। यह लचीला है और इतना सबल है कि युद्ध एवं शान्ति दोनों ही समयों में देश को एक सूत्र में बांधे रख सकता है। मैं यह कहूंगा कि यदि नवीन संविधान के अन्तर्गत कोई गड़बड़ी पैदा होती है, तो इसका कारण यह नहीं होगा कि हमारा संविधान खराब था, बल्कि यह कहना चाहिए कि अधिकाररूढ़ व्यक्ति ही अधम था, नीच था। अध्यक्ष महोदय, इन शब्दों के साथ मैं प्रस्ताव करता हूं कि इस पर विचार किया जाए।

संविधान में लिख गए, तभी मिले अधिकार।
बाबा साहब आप को, नमन करें शत बार।।

संविधान ने ही दिया, मान और सम्मान।
वरना तो हम थे सभी,खुशियों से अनजान।।

-विनोद सिल्ला

संविधान सभा में 25 नवंबर को अंतिम भाषण

-डॉ. भीमराव अम्बेडकर

25 नवंबर 1949 को डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने संविधान सभा में ऐतिहासिक भाषण दिया। इस भाषण में उन्होंने संविधान, भारतीय समाज के विभिन्न पक्षों पर अपने विचार प्रस्तुत किए। संविधान की सीमाओं और खूबियों का जिक्र किया तथा इसे लागू करने वाले लोगों के लिए भी अपने विचार रखे। इस भाषण से संविधान के अनेक पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है। संविधान पर हो रही निरंतर बहस में डा. भीमराव अंबेडकर का यह भाषण बहुत ही महत्वपूर्ण है। -सं.

महोदय

संविधान सभा की पहली बैठक दिनांक 9 दिसंबर, 1946 को हुई। इस बात को आज 2 वर्ष 11 महीने और 7 दिन बीते हैं। इस दरमियान संविधान सभा के कुल 17 सत्र हुए हैं। इन 17 सत्रों में 6 सत्र संविधान की भूमिका का प्रस्ताव पारित करने और मौलिक अधिकार, केंद्रीय संविधान, केंद्र के अधिकार, प्रांतीय संविधान, अल्पसंख्यक समिति की रिपोर्ट तथा अनुसूचित क्षेत्र और अनुसूचित जनजातियों पर विचार-विमर्श करने में बीते। सात, आठ, नौ, दस और ग्यारहवें सत्र का उपयोग मसौदा संविधान पर विचार-विनिमय के लिए किया गया।

संविधान सभा ने 29 अगस्त, 1947 के दिन मसौदा समिति को चुना। उसकी पहली बैठक 30 अगस्त को हुई। 30 अगस्त, से 141 दिनों तक कामकाज चला । इस दरमियान समिति संविधान का मसौदा तैयार करने के काम में व्यस्त रही। संविधान सलाहकारों ने कामकाज के लिए ढांचा मसौदा समिति को सौंपा तब मसौदा संविधान में 243 अनुच्छेद और 13 अनुसूचियां थीं। मसौदा समिति द्वारा संविधान सभा को प्रस्तुत किए पहले

मसौदा संविधान में कुल 315 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां शामिल थी। विचार-विमर्श के आखिरी दौर में मसौदा संविधान में अनुच्छेदों की संख्या बढ़ कर 386 हुई। अंतिम स्वरुप में मसौदा संविधान में 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां शामिल हैं। मसौदा समिति में करीब 7635 सुधार सुझाए गए, उनमें से 2473 सुधार प्रत्यक्ष विचारार्थ सदन में प्रस्तुत किए गए।

इन वास्तविक स्थितियों का मैं केवल इसलिए जिक्र कर रहा हूं क्योंकि किसी समय ऐसा कहा जाता था कि अपना काम पूरा करने के लिए समिति ने अत्यधिक समय लिया। वह बेहद धीमी गति से काम करती रही। जनता का धन बेहिसाब खर्च करती रही। रोम जब जल रहा था तब जैसे नीरो फिडल बजाता बैठा था बिल्कुल उसी तरह के हालात समिति के भी होने की बातें कही जा रही थीं। क्या इन आरोपों में सच्चाई है? अन्य देशों की संविधान समितियों द्वारा संविधान बनाने के लिए कितना समय लिया इस पर आइए, एक नजर डालते हैं। कुछ उदाहरण देखते हैं। अमेरिका की समिति की पहली बैठक 25 मई, 1787 को हुई थी। चार महीनों में अर्थात् 17 सितंबर, 1787 को उन्होंने अपना काम पूरा किया। कनाडा की संविधान सभा की पहली बैठक 10 अक्तूबर, 1864 को हुई और मार्च, 1867 में संविधान का कानून में परिवर्तन हुआ। अर्थात् 2 साल 5 महीनों का समय लगा। ऑस्ट्रेलिया के संविधान निर्माण का काम मार्च 1891 में शुरु हुआ और 9 जुलाई, 1900 में उनके संविधान को कानून का स्वरूप मिला। इसके लिए उन्हें 9 वर्ष का समय लगा। दक्षिण अफ्रीका के संविधान निर्माण के काम की शुरुआत अक्तूबर, 1908 में हुई और 20 सितंबर, 1909 में उनके संविधान को कानून का स्वरुप प्राप्त हुआ। एक साल के परिश्रम से उन्होंने यह काम पूरा किया। यह बात सही है कि अमेरिका और दक्षिण अफ्रीका की संविधान समितियों द्वारा लिए गए समय से हमने अधिक समय लिया। लेकिन कनाडा की संविधान सभा से हमने अधिक समय नहीं लिया और ऑस्ट्रेलिया की संविधान सभा की तुलना में हमने बहुत ही कम समय लिया। किसने कितना समय लिया इस बारे में सोचते समय दो बातों पर ध्यान दिया जाना जरूरी है। पहली बात यह कि अमेरिका, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया इन देशों के संविधान हमारे देश के संविधान से बहुत छोटे हैं। जैसा कि मैंने बताया कि हमारे संविधान में 395 अनुच्छेद हैं। अमेरिकी संविधान में केवल 7 अनुच्छेद हैं। उनमें से पहले 4 अनुच्छेदों को 21 उपविभागों में विभाजित किया गया है। कनाडा के संविधान में 147, ऑस्ट्रेलिया के संविधान में 128 और दक्षिण अफ्रीका के संविधान में 159 अनुच्छेद हैं। एक और बात पर ध्यान दिया जाना जरूरी है कि इन चारों देशों के संविधान निर्माताओं को संविधान सुधार के सवालों का सामना नहीं करना पड़ा था। जिस स्वरूप में प्रस्तुति की गई उसी रूप

में उन्हें स्वीकृति मिली। दूसरी तरफ हमारी संविधान सभा को 2473 सुधारों पर विचार करना पड़ा। इस वास्तविकता को ध्यान में रखें तो देरी का आरोप निराधार है। इतने कम समय में इतना कठिन कार्य पूरा करने के लिए समिति ख़ुद का अभिनंदन करे तो उसमें कुछ गलत नहीं कहा जा सकता।

मसौदा समिति के कार्य की ओर देखते हुए ऐसा लगता है। आयु. नजीरुद्दीन अहमद को उसे पूरी तरह नकारना उनका कर्तव्य है उनकी राय में, मसौदा समिति का काम न केवल नकारने योग्य है बल्कि उससे भी हीन स्तर का है। मसौदा समिति द्वारा किए गए कार्य के बारे में अपनी राय प्रकट करने का अधिकार हर किसी को है। नजीरुद्दीन को भी है। मसौदा समिति के किसी भी सदस्य से अधिक बुद्धिमान होने का नजीरुद्दीन को भरोसा है। मसौदा समिति उनके इस दावे को चुनौती नहीं देना चाहती। बल्कि, संविधान सभा को वह मसौदा समिति पर नियुक्त होने लायक हैं ऐसा ही लगता है। इसलिए उनका हमारे बीच स्वागत करने में मसौदा समिति को खुशी ही होती। संविधान निर्माण के कार्य में उन्हें योगदान का अवसर अगर नहीं मिला तो निश्चित रूप से संविधान समिति का कोई दोष नहीं।

मसौदा समिति पर अपना गुस्सा प्रकट करने के लिए नजीरुद्दीन अहमद ने उसे एक नया नाम दिया है। वह मसौदा समिति को भ्रमण करने वाली समिति कहते हैं। व्यंग्य कसने में नजीरुद्दीन को निश्चित रूप से खुशी मिलती होगी इसमें कोई दो राय नहीं।

लेकिन उन्हें एक बात के बारे में स्पष्ट जानकारी शायद नहीं है कि अनियंत्रण के कारण बहते जाना और बहते हुए पर नियंत्रण रखने में फर्क होता है। परिस्थितियों पर नियंत्रण था, इसलिए मसौदा समिति कभी बह नहीं गई। जहां मछली जाल में नहीं फंसने वाली थी वहीं जाल बिछा कर वे बैठी नहीं रही। जो मछली वह पकड़ना चाहती थी, वह जहां मिलने की संभावना थी वहीं उसने अपना जाल बिछाया था। बेहतर कुछ पाने की कोशिश करना इसका मतलब भटकना नहीं होता। यह कह कर नजीरुद्दीन संविधान समिति का अभिनंदन नहीं करना चाहते यह मैं जानता हूं फिर भी मैं, उन्होंने जो भी कुछ कहा है उसे समिति के अभिनंदन के रूप में ही स्वीकार करता हूं। दोषपूर्ण सुधारों को परे कर अगर योग्य सुधारों को स्वीकारने की ईमानदारी और साहस मसौदा समिति नहीं दिखाती तो ही वह अपने कर्तव्य से हट जाती और प्रति की झूठी बातों की बलि चढ़ने की दोषी कहलाती। यह अगर गलत है तो उस गलती को बेझिझक मान कर उनमें सुधार लाने के लिए मसौदा समिति ने कोशिश की इसमें मुझे खुशी है।

एक सदस्य के अपवाद को अगर छोड दें तो संविधान सभा के सदस्यों द्वार मसौदा समिति द्वारा किए गए काम की भरपूर प्रशंसा की है इसकी मुझे खुशी है। मसौदा समिति

द्वारा जो परिश्रम किए गए उनका उत्स्फूर्तता से स्वीकार कर खुले दिल से प्रशंसा किए जाने से मसौदा समिति को खुशी होगी इसका मुझे भरोसा है। संविधान सभा के सदस्य और मसौदा समिति के मेरे सहयोगियों ने मुझ पर अभिनंदन की जो वर्षा की है उससे मैं इतना गदगद हुआ हूं कि उनके प्रति अपनी कृतज्ञता को पूरी तरह व्यक्त करने के लिए मेरे पास यथा योग्य शब्द नहीं बचे हैं। संविधान सभा में आते हुए आरक्षित जातियों के हितों की रक्षा करने के अलावा मेरी कोई बड़ी आकांक्षा नहीं थी। इससे बड़ी जिम्मेदारी के काम के लिए मुझे आमंत्रित किया जाएगा इसका मुझे थोड़ा भी अहसास नहीं था। मसौदा समिति में मुझे चुना गया तो मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। मसौदा समिति के अध्यक्ष पद के लिए जब मुझे चुना गया तब तो मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना ही नहीं रहा। मसौदा समिति में मेरे मित्र सर अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर जैसे मुझसे बडे, अच्छे और योग्य व्यक्ति थे। इतना भरोसा कर, मुझ पर इतनी बड़ी जिम्मेदारी सौंप कर उन्होंने मेरा चयन किया और देश सेवा का मुझे मौका दिया इसके लिए मैं संविधान सभा और मसौदा समिति के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूं। (हर्षध्वनि)

मुझे इस काम का श्रेय दिया जा रहा है लेकिन यह केवल मेरा काम नहीं है। संविधान सभा के सलाहकार सर. बी. एन. राव का भी इसमें आंशिक योगदान है जिन्होंने मसौदा समिति के विचारार्थ संविधान का कच्चा मसौदा तैयार किया। मसौदा समिति के अन्य सदस्यों का भी इसमें हिस्सा है। जैसा कि मैंने बताया, 141 दिनों तक इस समिति ने काम किया। नए सूत्र ढूंढ निकालने की इस समिति की कल्पनाशीलता और कई मुद्दों को अपने विचारों में समाहित करने की सहनशीलता के बगैर संविधान निर्माण का यह कठिन काम सफलता के साथ पूरा नहीं हो पाता। इसके श्रेय का बड़ा हिस्सा संविधान का ढांचा बनाने वाले प्रमुख आयु. एस एन मुखर्जी को भी है। जटिल प्रस्तावों को आसान और सुस्पष्ट कानूनी स्वरूप में परिवर्तित करने को तथा इसके लिए कठोर परिश्रम करने की उनकी क्षमता शायद ही किसी और में हो। वह समिति का एक बहुमूल्य रत्न हैं। उनके सहयोग के बगैर संविधान को पूरा करने के लिए समिति को कई वर्षों तक काम करना पड़ता।

आयु. मुखर्जी के तहत काम करने वाले कर्मचारियों का जिक्र मुझे करना ही होगा। कितना मुश्किल काम उन्होंने पूरा किया है। कितना कठोर परिश्रम उन्हें करना पड़ा मुझे अहसास है कि कभी-कभी उन्होंने आधी-आधी रात तक जाग कर काम पूरा किया है। उनकी कोशिश और उनके सहयोग के लिए मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूं। (हर्षध्वनि)

संविधान सभा अगर विभिन्न घटकों का बिखरा हुआ समुदाय बन कर रहती तो, यहां काला पत्थर, वहां सफेद पत्थर दिखाई देने वाली सिमेंट के इस्तेमाल के बगैर बनी

सड़क की तरह हर सदस्य और हर समूह अपने आप में एक कानून बन कर रहता, मसौदा समिति के लिए काम करना बेहद मुश्किल हो जाता। अफरातफरी के अलावा कुछ हाथ नहीं आता। समिति में काँग्रेस के अस्तित्व के कारण कामकाज व्यवस्थित और अनुशासनबद्ध ढंग से हो पाया। अफरातफरी पैदा होने का कोई मौका ही उत्पन्न नहीं हुआ। काँग्रेस पार्टी के अनुशासन के कारण ही संविधान समिति को संविधान के हर अनुच्छेद और हर संशोधन के भविष्य के प्रति यकीन हुआ और संविधान प्रस्तुत करना आसान हुआ। इसी कारण मसौदा संविधान सभा में आसानी से पारित होने का श्रेय काँग्रेस पार्टी को भी देना होगा।

सभी सदस्य अगर पार्टी के अनुशासन से बंधे रहते तो संविधान सभा का कामकाज बड़ा नीरस हो जाता। पार्टी की अनुशासन संबंधी कठोर नीति के कारण सभी केवल हामी भरने वाले समूह मात्र में परिवर्तित होकर रह जाते। संयोग से समिति में कुछ विद्रोही लोग भी थे। उनमें मुख्यतः आयु. कामत, डॉ. पी. एस. देशमुख, आयु. सिधवा, प्रो. सक्सेना और ठाकुरदास भार्गव का भी समावेश था। उनके साथ ही प्रो. के. टी. शाह और हृदयनाथ कुंजरू का जिक्र करना ही पड़ेगा। उनके द्वारा उपस्थित किए गए मुद्दे सैद्धांतिक थे, मैं उनकी सूचनाओं को स्वीकार नहीं कर पाया इसका मतलब उनकी सूचनाओं का मूल्य कम था ऐसा नहीं होता। समिति के कामकाज में जिंदादिल बनाए रखने के लिए उनके द्वारा दिए गए योगदान का महत्व कम नहीं होता। मैं उनके प्रति आभार प्रकट करता हूं। उनके बगैर संविधान के मौलिक सिद्धांतों को स्पष्ट करने का मौका मुझे नहीं मिलता। असल में संविधान पारित करने के तकनीकी हिस्से से भी यह अधिक महत्वपूर्ण है।

और, अध्यक्ष महोदय, इस सभा का कामकाज आपने जिस तरह सम्भाला उसके लिए आखिर में मुझे आपके प्रति आभार व्यक्त करना ही होगा। इस सभा के कामकाज में जिन सदस्यों ने हिस्सा लिया, उनके साथ जो आप अपनत्व और सम्मान के साथ पेश आए यह कभी भुलाया नहीं जा सकता। मसौदा समिति द्वारा प्रस्तावित कुछ सुधार केवल तकनीकी से संबंधित होने का कारण बताते हुए नकारने की कोशिश हुई। मेरे लिए वे क्षण बहुत ही चिंताजनक थे। संविधान निर्माण के कार्य को असफल बनाने के उद्देश्य से आगे ले आए गए कठोर कानून को आपने अनुमति नहीं दी इसलिए खास कर मुझे आपको धन्यवाद देना है।

संविधान का जितना समर्थन करना था उतना मेरे मित्र सर अल्लादि कृष्णस्वामी अय्यर और आयु. टी. टी. कृष्णमाचारी ने किया है। इसलिए संविधान की गुणवत्ता के मसले पर मैं बोलना नहीं चाहता। मेरी राय में संविधान भले कितना भी बुरा हो उसे लागू करने की जिम्मेदारी जिन पर है वे अगर ईमानदार हों तो वे अच्छे ही साबित होंगे। इसी

प्रकार संविधान भले कितना भी बुरा क्यों न हो उसे लागू करने की जिम्मेदारी जिन पर है वे अगर ईमानदार हों तो वह अच्छा ही साबित होगा। संविधान पर अमल करना पूरी तरह से संविधान पर ही निर्भर नहीं करता। संविधान केवल राज्य के कुछ हिस्सों को - जैसे कि कानून मंडल, कार्यकारी मंडल और न्यायपालिका बनाता है। इन विभागों का कार्य हमेशा लोगों पर तथा अपनी आकाक्षाएं तथा साधनों के रूप में लोगों द्वारा निर्माण की गई राजनीतिक पार्टियों पर निर्भर रहने वाला है। भारत के लोग और उनके राजनीतिक दल कब किस प्रकार पेश आएंगे यह कोई कैसे बताए? अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के संवैधानिक मार्ग को अपनाएंगे या फिर क्रांतिकारी मार्ग को अपनाएंगे? अगर वे क्रांतिकारी मार्ग को अपनाएंगे तो भले संविधान कितना भी अच्छा क्यों न हो वे असफल रहेंगे यह बताने के लिए किसी विधिवेता की जरूरत नहीं। इसीलिए भारतीय लोग और उनके राजनीतिक दल कैसे पेश आएंगे यह जाने बगैर संविधान के बारे में कोई भी निर्णय लेना निरर्थक होगा।

साम्यवादी और समाजवादी दल की ओर से संविधान के बारे में बड़े पैमाने पर नाराजगी जताई जा रही है। वे संविधान के प्रति क्यों नाराजगी जाहिर करते हैं? सचमुच संविधान ठीक नहीं है इसलिए क्या वे अपनी नाराजगी व्यक्त करते हैं? इस सवाल के जवाब में मैं निश्चित रूप से ना ही कहूंगा। साम्यवादी पार्टी को कामगारों पर तानाशाही के सिद्धांतों पर आधारित संविधान चाहिए। प्रस्तुत संविधान संसदीय जनतंत्र पर आधारित होने के कारण वे संविधान का विरोध करते हैं। समाजवादी दो बातें चाहते हैं – पहली बात कि, अगर सत्ता उनके हाथ में आती है तो वे बिना उसकी कीमत चुकाए निजी संपत्ति का राष्ट्रीयकरण अथवा सामाजीकरण करने की आजादी उन्हें संविधान के तहत मिलनी ही चाहिए। समाजवादी जो एक और चीज चाहते है वह है संविधान के मौलिक अधिकार निरपेक्ष तथा किसी भी तरह के बाधारहित होने चाहिए। उनके पक्ष को अगर सत्ता प्राप्त करने में असफलता मिली तो बेरोकटोक टीका-टिप्पणी करने की ही नहीं वरन् राज्य को नेस्तनाबूत करने की आजादी भी उन्हें चाहिए।

मुख्य रूप से इन दोनों मांगों के कारण ही संविधान पर टिप्पणी के बाण चलाए जा रहे हैं। संसदीय जनतंत्र के सिद्धांत ही केवल राजनीतिक जनतंत्र का आदर्श रुप हैं ऐसा मैं नहीं मानता। मैं ऐसा नहीं कह सकता कि मोल चुकाए बिना किसी की निजी संपत्ति को अपने कब्जे में करने का सिद्धांत इतना पवित्र है कि उससे अलग नहीं हुआ जा सकता। मौलिक अधिकार कभी भी अबाध नहीं हो सकते, और मैं यह भी नहीं कहता कि उन पर डाले गए प्रतिबंध कभी हटाए ही नहीं जा सकते। मैं बस इतना बताना चाहता हूं कि

संविधान में शामिल राय आज की पीढ़ी की राय है। आपको यह कथन अगर अत्युक्तिपूर्ण लगता है तो मैं यह कहूंगा कि ये संविधान सभा के सदस्यों की राय है।

संविधान में उन्हें शामिल करने को लेकर मसौदा समिति को दोष नहीं दिया जाना चाहिए। वैसे, मैं कहूँ कि संविधान सभा पर भी इसका दोषारोपण क्यों हो? अमेरिका के संविधान निर्माण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले अमेरिकी कूटनीतिज्ञ जेफरसन ने कुछ अति महत्वपूर्ण और तथ्यपूर्ण विचार व्यक्त किए हैं। संविधान निर्माताओं को उनके विचारों को हमेशा याद रखना चाहिए। एक जगह वह कहते हैं कि, ‘‘हर पीढ़ी बहुसंख्यकों की इच्छा के अनुसार खुद को बांध लेने का अधिकार प्राप्त आजाद राष्ट्र की तरह है। अन्य राष्ट्र के लोगों की तरह ही आने वाली पीढ़ी को कोई बंधक नहीं बना सकता।!

एक और जगह वह कहते हैं, ‘‘देश हित के लिए स्थापन की गई संस्थाओं को छुआ नहीं जा सकता अथवा उनमें फेरबदलाव नहीं किया जा सकता। उनके उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उन्हें जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। क्योंकि लोगों के हित की जिम्मेदारी जिन पर सौंपी गई है उन्हें कुछ अधिकार भी बहाल किए गए हैं। शायद सत्ता का दुरुपयोग करने वाली राजसत्ता के खिलाफ यह असरदार प्रावधान हो सकता है। लेकिन यह कल्पना राष्ट्र के दृष्टिकोण से बेहद नासमझी है। इसके बावजूद हमारे कानूनविद और धर्मगुरु इसी सिद्धांत को सामान्यतया लागू करने की कोशिश करते हैं। वो सोचते हैं कि हमसे पहली पीढ़ी इस धरती पर अधिक आजादी के साथ रहा करती थी। हम जिसे बदल नहीं पाएंगे ऐसे अपरिवर्तनीय कानून हम पर लादने के अधिकार उनके पास थे। इसी प्रकार भावी पीढ़ी जिसे बदल न पाए ऐसे कानून हमने बनाए और लोगों पर लादे तो यह दुनिया केवल मृतकों की होगी, जिंदा लोगों की नहीं होगी।"

मैं मानता हूं कि जेफरसन ने जो बताया है वह सत्य है। इस बारे में दो राय नहीं हो सकती। जेफरसन के बताए सत्य की ओर अगर संविधान सभा नजरंदाजी करती तो उस पर दोषारोपण किया जा सकता था। उसका विरोध भी किया जा सकता था। लेकिन क्या सचमुच ऐसा हुआ है? वास्तविकता इसके बिल्कुल खिलाफ है। संविधान में सुधार के प्रावधान का ही उदाहरण लीजिए। कनाडा के संविधान में सुधार करने का अधिकार वहां के लोगों को नकारा गया है लेकिन हमारे संविधान ने उनकी तरह अंतिम और अचूक होने का दावा नहीं किया है। अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया की तरह संविधान में सुधार के लिए असाधारण शर्तें भी नहीं रखी गईं हैं। उल्टे संविधान सभा ने हमारे संविधान में सुधार के लिए बेहद सुलभ तरीकों का प्रावधान रखा है। संविधान की समीक्षा करने वाले किसी भी समीक्षक को मैं चुनौती देता हूं कि वे दिखा दें कि अपनी जैसी स्थिति वाले संसार के

किसी भी देश की संविधान सभा द्वारा सुधार के लिए इस तरह का प्रावधान किया गया हो। संविधान के प्रति असंतुष्ट लोगों को केवल 2/3 का बहुमत ही प्राप्त करना होगा। वयस्क मतदान पद्धति से चुनी गई संसद में उनकी तरफ से वे 2/3 का बहुमत भी अगर प्राप्त नहीं कर सकें तो संविधान के प्रति उनके असंतोष को आम जनता का असंतोष नहीं माना जा सकता।

संविधान से संबंधित एक महत्वपूर्ण विषय के बारे में अब मैं कहना चाहता हूं। सत्ता का जरूरत से अधिक केंद्रीकरण किया गया है और प्रांतों को नगरपालिका के स्तर पर लाया गया है इस प्रकार की एक गंभीर शिकायत भी की जाती है। स्पष्ट है कि यह नजरिया न केवल अत्युक्तिपूर्ण है, बल्कि संविधान के जरिए क्या करवाना है इस बारे में जानकारी के अभाव को भी दर्शाता है। केंद्र और राज्य के बीच का संबंध जानने के लिए जिन मूलभूत सिद्धांतों पर वे आधारित होते हैं उन्हें समझना जरूरी है। संघ राज्य का मूलभूत सिद्धांत यह है कि विधानसभा और कार्यकारी मंडल की सत्ता का केंद्र और राज्य के बीच का बंटवारा केंद्र के किसी कानून के तहत नहीं वरन् संविधान द्वारा ही किया गया है।

संविधान का यही काम है। संविधान के तहत होने वाले राज्य अपने विधि संबंधी अथवा कार्यकारी अधिकारों के लिए किसी भी प्रकार केंद्र पर निर्भर नहीं हैं। इस मामले में केंद्र और राज्य समान स्तर पर हैं। ऐसे संविधान को केंद्रीभूत कहा जाए यह बात समझना थोड़ा मुश्किल है। यह भी हो सकता है कि अन्य किसी भी संघराज्य के संविधान में जितना नहीं दिया गया है उतना विधानसभा और कार्यकारी मंडल का व्यापक क्षेत्र संविधान द्वारा केंद्र को दिया गया है। ऐसा भी हो सकता है कि शेष अधिकार राज्यों को न देकर केंद्र को दिए गए हों। लेकिन ये विशिष्टताएं संघराज्य के मूलतत्व नहीं हैं। जैसा कि मैंने बताया था, संघराज्य की मूल पहचान है केंद्र और घटकों के बीच विधानसभा और कार्यकारी मंडल की सत्ता का संविधान द्वारा किया गया विभाजन है। यह तत्व हमारे संविधान में अंतर्निहित है। इस बारे में कोई गलती हो ही नहीं सकती। यह कहना गलत होगा कि इसीलिए राज्यों को केंद्र के अधिकार में रखा गया है। विभाजन की यह मर्यादाएं केंद्र अपनी इच्छानुसार नहीं बदल सकता। यह अधिकार न्यायपालिका के पास भी नहीं है। इस बारे में यह बिल्कुल योग्य कहा गया है कि -

"न्यायालय सुधार ला सकते हैं लेकिन एक को हटा कर उसकी जगह दूसरा कानून नहीं बना सकते। पुराने अन्वयार्थ में बदलाव करते हुए वे नया युक्तिवाद कर सकते हैं, नया नजरिया सामने रख सकते हैं। अल्पमत से दिए गए निर्णयों को बदल सकते हैं लेकिन सीमा-रेखाएं ऐसी हैं जिन्हें वे पार नहीं कर पाएं। अधिकार के निश्चित बंटवारे में अब वे नए

सिरे से फेरबदलाव नहीं ला सकते। जो अधिकार अस्तित्व में हैं उनकी व्यापकता वे बढ़ा सकते हैं लेकिन एक सत्ता को दिया अधिकार निःसंशय दूसरे को नहीं दिया जा सकता।"

इस प्रकार संघ पद्धति को हराने वाला केंद्रीयकरण का यह पहला आरोप निराधार सिद्ध होता है।

दूसरा आरोप यह कि, राज्यों को परास्त करने का अधिकार केंद्र को दिया गया है। इस आरोप को मानना ही पड़ेगा। लेकिन इस प्रकार मात देने का अधिकार संविधान की साधारण विशिष्टताओं का हिस्सा नहीं है। उनका प्रयोग और उन पर किए जाने वाले अमल को केवल आपातकाल तक ही सीमित रखा गया है। ध्यान रखने योग्य एक और बात यह है कि आपातकाल आने के बाद हम केंद्र को अधिकार देना क्या टाल सकते हैं? आपातकाल के दौरान भी केंद्र के पास विजय पाने के अधिकार होने की बात जिन्हें मंजूर नहीं है उन्हें लगता है, समस्या के बारे में स्पष्ट जानकारी नहीं है। प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'द राउंड टेबल" के दिसंबर 1935 के अंक में इस समस्या को एक लेखक ने बहुत सफाई से स्पर्श किया है। उसमें से कुछ हिस्सा यहां उद्धृत कर रहा हूं-

"अधिकार और कर्तव्य की आपसी उलझन राजनीतिक व्यवस्था है और अंततः नागरिक किसकी और किस सत्ता के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करें इस बात से ताल्लुक रखती है। सामान्य हालात में यह समस्या पैदा नहीं होती। कानून पर आसानी से अमल किया जा सकता है। अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग सत्ताओं का आदेश मान कर मनुष्य अपना व्यवहार करता रहता है। संकट के समय किसका आदेश माना जाए इस बात को लेकर संघर्ष पैदा हो सकता है। और स्पष्ट है कि ऐसे समय अंतिम निष्ठा को टूटने नहीं देना चाहिए। निष्ठा के बारे में अंतिम निर्णय कानून के न्यायालयी अर्थ के सहारे नहीं लिया जा सकता। कानून को वस्तुस्थिति के साथ मेल खाने वाला होना चाहिए वरना वह बिल्कुल प्रभावहीन होगा। जब सारे शिष्टाचार एक तरफ कर रखे जाते हैं उस वक्त एक सवाल रह जाता है कि नागरिकों की शेष निष्ठा पर किसकी सत्ता हो? केंद्र की अथवा घटक राज्यों की?'!

इस सवाल का जवाब कौन और किस प्रकार देता है इस पर इस समस्या का हल निर्भर करता है और यही सवाल महत्वपूर्ण है। आपातकाल के दौरान नागरिकों की शेष निष्ठा घटक राज्यों के साथ नहीं बल्कि केंद्र के साथ होनी चाहिए। ज्यादातर लोगों की यही राय होती है। इसमें कोई दो राय नहीं। क्योंकि मिली-जुली उद्देश्यपूर्ति के लिए और देश के कुल हितों की रक्षा के लिए केंद्र सरकार ही कार्य करती है। इसी कारण आपातकाल में केंद्र सरकार को अधिक अधिकार देने का समर्थन निहित होता है। आखिर आपातकालीन अधिकार केंद्र को देने में राज्यों पर क्या उत्तरदायित्व आता है? इतना ही

फेरबदलाव आता है कि आपातकाल में अपने हितों की रक्षा के साथ-साथ राज्यों को कुल राष्ट्र की राय और राष्ट्र के हितों का ध्यान रखना होता है। जो इस व्यवस्था को ठीक से समझ नहीं पाए हैं वही इसके खिलाफ शिकायत करेंगे।

यहां मैंने अपना भाषण पूरा किया होता, लेकिन मेरा मन देश के भविष्य को लेकर इतना चिंतित है कि इस बारे में मेरी राय व्यक्त करने के लिए इस अवसर का इस्तेमाल किया जाए ऐसा मुझे लगता है। 26 जनवरी, 1950 के दिन भारत एक आजाद देश बनेगा। (हर्षोल्लास की ध्वनि) फिर उस आजादी का क्या होगा? भारत अपनी आजादी को

बरकरार रखेगा या फिर से गंवा देगा? मेरे मन में यही विचार पहले आता है। भारत 1947 से पहले कभी आजाद नहीं था ऐसी बात नहीं है। लेकिन एक बार उसने अपनी आजादी गंवाई है, क्या एक बार फिर वह अपनी आजादी गंवा बैठेगा? भविष्य के बारे में यही सवाल मुझे बहुत ज्यादा चिंता में डालता है। भूतकाल में भारत ने केवल अपनी आजादी गंवाई थीं ऐसी बात नहीं है। देश के ही कुछ विश्वासघात करने वाले और बेईमान लोगों के कारण भारत ने अपनी आजादी गंवाई थी यह वास्तविकता मुझे बेहद बेचैन करती है। मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध प्रांत पर हमला किया उस वक्त दस राज्यों के सैनिक

अधिकारियों ने मुहम्मद बिन कासिम के दूतों से घूस ली और अपने राज्य के लिए लड़ने से इनकार किया। मुहम्मद गौरी को भारत पर आक्रमण करने का आमंत्रण जयचंद ने दिया था। पृथ्वीराज के खिलाफ लड़ने के लिए उसने मुहम्मद गौरी को अपने और सोलंकी राजाओं की मदद का आश्वासन दिया था। शिवाजी जब हिंदुओं की मुक्ति के लिए लड़ रहा था उस वक्त अन्य मराठा सरदार और राजपूत राजा मुगल सम्राटों की ओर से युद्ध लड़ रहे थे। सिक्ख राज्यकर्ताओं को हराने की कोशिश जब अंग्रेज शासक कर रहे थे तब उनका प्रमुख सेनापति गुलाबसिंह चुप बैठा रहा। सिक्खों का राज्य बचाने के लिए उसने सिक्खों की मदद नहीं की। 1857 को भारत के ज्यादातर हिस्सों में अंग्रेजों के खिलाफ स्वतंत्रता युद्ध की घोषणा की तब सिक्ख दर्शक बन कर बस देखते रहे।

क्या एक बार फिर इतिहास दोहराया जाएगा? इसी ख्याल से मैं चिंताग्रस्त हुआ हूं। जातियों और संप्रदायों के रूप में अपने पुराने दुश्मनों के साथ भिन्न और परस्पर-विरोधी विचारप्रणाली वाले राजनीतिक दलों की भी भरमार होने वाली है। इस वास्तविकता के बारे में सोच कर मैं अधिक ही चिंताग्रस्त हुआ हूं। मैं नहीं जानता कि भारत के लोग अपने सिद्धांत से देश को श्रेष्ठ स्तर पर देखेंगे अथवा अपने सिद्धांत को देश से बढ़कर मानेंगे। लेकिन एक बात पक्की है कि अगर पक्ष अपनी तत्वप्रणाली को देश से बढ़कर मानेंगे तो दोबारा आजादी गंवाने का संकट आएगा ही और इस बार आजादी गंवा बैठे तो वह हमेशा के लिए हाथ से जाएगी। इस संभावना के खिलाफ लड़ने के लिए हमें कटिबद्ध होना है। अपने खून की आखिरी बूंद जब तक है तब तक अपनी आजादी की रक्षा का निर्धारण हमें करना ही होगा। (हर्षध्वनि)

26 जनवरी, 1950 को भारत एक जनतांत्रिक देश बनेगा अर्थात् उस दिन भारत में ऐसी सरकार बनेगी जो लोगों द्वारा बनाई जाएगी, लोगों की होगी, लोगों के लिए काम करेगी। तभी मेरे मन में ख्याल आता है कि इस जनतांत्रिक संविधान का क्या होगा? उसे महफूज रखने के लिए यह देश समर्थ रहेगा या एक बार फिर वह अपनी आजादी गंवा बैठेगा? मेरे मन में आने वाला यह दूसरा ख्याल भी पहले ख्याल की तरह ही मुझे चिंता में डाल देता है।

जनतंत्र क्या होता है यह भारत को पता नहीं था ऐसी बात नहीं है। किसी जमाने में भारत में गणराज्यों की भरमार थी। अगर कहीं नौकरशाही थी तो चुनी हुई या सीमित हुआ करती थी। वे कभी भी अबाध नहीं थी। भारत को संसद अथवा संसदीय प्रणाली के बारे में पता नहीं था ऐसी बात नहीं। बौद्ध भिक्खू संघों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि उस वक्त न केवल संसद थी बल्कि संघ भी कुछ और नहीं संसद ही थे। आधुनिक युग में परिचित संसदीय कार्यप्रणाली के सभी नियम संघ को पता थे और वे उनका पालन करते

थे। बैठने की व्यवस्था, विधेयक प्रस्तुत करने के नियम, प्रस्ताव, कामकाज के लिए जरूरी न्यूनतम सदस्य संख्या, दल के नेता द्वारा आदेश देना, मतों की गिनती, मतपत्रिका के द्वारा मतदान करना, कटौती की सूचना, नियम से काम करना, न्याय व्यवस्था आदि के बारे में उनके पास नियम थे। संसद के काम के ये नियम बुद्ध द्वारा संघ की सभाओं के लिए प्रयोग में लाए गए थे, लेकिन देश में उस दौरान कार्यरत राजनीतिक विधानसभा की नियमावली से ही उन्होंने ये नियम स्वीकारे होंगे।

भारत ने यह जनतांत्रिक पद्धति गंवाई। अब क्या दूसरी बार भी वह उसे गंवाने वाला है? मैं नहीं जानता। लेकिन लंबे समय से जनतंत्र प्रयोग में न होने के कारण उसका बिल्कुल नया लगना भारत जैसे देश में हो सकता है। यहां जनतंत्र द्वारा तानाशाही को स्थान दिए जाने का जोखिम है। नए सिरे से देश में आया जनतंत्र अपना बाह्यरूप बरकरार रखेगा लेकिन असल में वह तानाशाही को ही जन्म देगा। प्रचंड बहुमत हो तो दूसरी संभावना के पैदा होने का जबरदस्त खतरा है।

हम अगर सचमुच चाहते हैं कि केवल बाह्य स्वरूप में ही नहीं वरन् वास्तव में जनतंत्र अस्तित्व में आए तो हमें उसके लिए क्या करना होगा? मेरी राय में तो पहले हमें अपने सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संवैधानिक मार्ग को ही अपनाने की ठान लेनी चाहिए अर्थात्, क्रांति का खून से सना मार्ग हमें त्यागना होगा। इसका मतलब है कि कानून तोड़ना, असहयोग, सत्याग्रह इन मार्गों को भी हमें दूर रखना होगा। आर्थिक और सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जब संवैधानिक मार्ग उपलब्ध नहीं थे तब इन असंवैधानिक मार्गों को अपनाने का बड़े पैमाने पर समर्थन किया जाता था। लेकिन अब संवैधानिक मार्ग उपलब्ध हैं इसलिए इन असंवैधानिक मार्गों का समर्थन नहीं कर सकते। असल में ये मार्ग अराजकता फैलाने की शुरुआत हैं। जितने जल्दी हम उन्हें त्याग देंगे उतना ही हमारे हित में होगा।

एक और महत्वपूर्ण बात है जिस पर हमारा अमल करना बेहद जरूरी है। जनतंत्र के संवर्धन में जिनकी आस्था है उन सबको जॉन स्टुअर्ट मिल की दी हुई चेतावनी को ध्यान में रखना होगा। उनकी राय में, ''व्यक्ति भले कितना भी महान हो लोगों को अपनी स्वतंत्रता उसके चरणों में अर्पण नहीं करनी चाहिए। साथ ही उस पर इतना विश्वास न करें कि वह प्राप्त अधिकारों का इस्तेमाल लोगों की संस्थाएं ध्वस्त करने के लिए करे।' अपना पूरा जीवन देश के लिए समर्पित करने वाले महापुरुषों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना गलत नहीं।

लेकिन कृतज्ञता की भी कोई सीमाएं होनी चाहिए। आइरिश देशभक्त डॉनियल ओकॉनेल ने ठीक ही कहा है कि, ''कोई भी व्यक्ति अपने स्वाभिमान की बलि चढा कर

कृतज्ञता व्यक्त नहीं कर सकता। कोई महिला अपने शील की बलि चढ़ाकर कृतज्ञता व्यक्त नहीं कर सकती और कोई भी देश अपनी आजादी की बलि चढ़ाकर कृतज्ञता व्यक्त नहीं कर सकता।" अन्य देशों की तुलना में भारत को सावधान रहने के इस इशारे पर ज्यादा ध्यान देना होगा। क्योंकि, भारत में भक्ति, भक्ति का मार्ग अथवा विभूतिपूजा अन्य किसी देश की राजनीति की तुलना में सबसे अधिक दिखाई देगी। धर्म में भक्ति आत्मा की मुक्ति का मार्ग हो सकती है लेकिन राजनीति में भक्ति अथवा व्यक्तिपूजा अधःपतन और अंततः तानाशाही की ओर ले जाने वाला मार्ग साबित होती है।

तीसरी बात केवल राजनीतिक जनतंत्र पर हमें संतोष नहीं कर लेना चाहिए। अपने राजनीतिक जनतंत्र का हमें सामाजिक जनतंत्र में परिवर्तन करा लेना ही चाहिए। राजनीतिक जनतंत्र की जड़ में अगर सामाजिक जनतंत्र की ताकत न हो तो वह अधिक समय तक टिक नहीं सकता। सामाजिक जनतंत्र क्या है? वह जीने की एक राह है। इसके जरिए स्वतंत्रता, समता और बंधुता को जीवन के सिद्धांत के रूप में मान्यता दी जाती है। स्वतंत्रता, समता और बंधुता को एक त्रयी के स्वतंत्र अंगों के रूप में नहीं सोचा जा सकता। इन तीनों का मिलकर एक संघ बनता है यानी कि उनमें से किसी एक को अलग करने का मतलब जनतंत्र के मूल उद्देश्य को ही छोड़ देना है। समता से स्वतंत्रता को अलग नहीं किया जा सकता और न ही स्वतंत्रता को समता से अलग किया जा सकता है। इसी प्रकार स्वतंत्रता और समता को बंधुभाव से अलग नहीं किया जा सकता। समता के बिना स्वतंत्रता का मतलब है कि कुछ लोगों का बहुतांश लोगों के ऊपर प्रभुत्व करना। स्वतंत्रता के बगैर समानता निजी कर्तत्व के लिए मारक होगी। बंधुता के बिना स्वतंत्रता और समता अस्तित्व में ही नहीं रहेंगे। उन्हें व्यवहार में ले आने के लिए पुलिस महकमे की जरूरत पड़ेगी।

भारतीय समाज में दो बातों का सिरे से अभाव है। इस वास्तविकता को मान कर ही हमें शुरुआत करनी होगी। उनमें से एक है समता। हमारा समाज श्रेणीबद्ध विषमता के सिद्धांत पर आधारित है अर्थात् समाज में कुछ लोग ऊंचे स्तर के हैं और अन्य लोग निचले स्तर के। आर्थिक क्षेत्र में हमारे समाज में कुछ लोगों के पास बहुत अधिक संपत्ति है तो कई लोग अत्यंत घोर गरीबी में जीते हैं। 26 जनवरी, 1950 के दिन हम एक विसंगतिपूर्ण समाज में प्रवेश करने वाले हैं। राजनीति में हमारे पास समता होगी, लेकिन सामाजिक और आर्थिक जीवन में असमानता होगी। राजनीति में हम हर व्यक्ति का एक वोट और हर वोट का समान मूल्य वाले सिद्धांत को मान्यता देंगे। सामाजिक और आर्थिक संरचना के कारण अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में हर व्यक्ति का समान

मूल्य वाला सिद्धांत हम नकारते रहेंगे। इसप्रकार के परस्पर विरोधी जीवन में हम और कब तक जिएंगे? आर्थिक और सामाजिक जीवन में हम और कब तक समानता को नकारते रहेंगे? अगर अधिक समय तक हम उसे नकारते रहेंगे तो अपना राजनीतिक जनतंत्र हम खुद संकट में डालेंगे इसमें कोई दो राय नहीं। इस विसंगति को जितनी जल्दी हो सके हमें खत्म कर देना है। अन्यथा जिन्हें विषमता जनित बुरे परिणामों को झेलना पड़ता है वे बहुत परिश्रम से इस सभा द्वारा निर्माण की गई राजनीतिक जनतंत्र की संरचना को नष्ट करेंगे।

हममें जो कमियां हैं, उनमें दूसरी है - बंधुत्व के तत्व को मानना। बंधुत्व यानी क्या? भारतीय लोग अगर एक हैं तो सभी भारतीयों में बंधुत्व का भाव समान रूप में होना है। सामाजिक जीवन में इससे एकता और सामंजस्य आता है। लेकिन इसे हासिल करना मुश्किल है। कितना मुश्किल है यह इस कहानी से पता चलता है जो अमेरिका के बारे में जेम्स ब्राइस ने अपने लिखे अमेरिकी कॉमनवेल्थ खंड में बताई है। मैं इस कहानी को ब्राइस के ही शब्दों में सुनाना चाहूंगा -

"कुछ वर्ष पूर्व अमेरिकन प्रोटेस्टंट एपिस्कोपल चर्च के त्रिवार्षिक अधिवेशन में उनकी सामूहिक प्रार्थना में फेरबदलाव करने का प्रसंग आया। प्रार्थना के वाक्यों को छोटा करने और सभी लोगों के लिए होने वाली प्रार्थना को उसमें मिलाना ठीक रहेगा। न्यू इंग्लैंड के प्रमुख धर्मोपदेशक ने ये शब्द सुझाए, कि, 'हे प्रभो हमारे राष्ट्र को आशीर्वाद दें! उस दिन सभी लोगों द्वारा उत्साह के साथ उन्हें स्वीकार भी किया गया। इसी वाक्य पर दूसरे दिन फिर सोचा गया। धर्मोपदेशकों के अलावा अन्य कई लोगों को राष्ट्र शब्द पर आपत्ति थी। उनका कहना था कि इस शब्द के कारण वास्तव में न होने वाली राष्ट्र की एकता स्पष्ट रूप से सूचित होती है। इसलिए उस शब्द को हटाया गया और 'हे प्रभो इन संयुक्त राज्यों को आशीर्वाद दे! शब्दों का प्रयोग किया गया।"!

यह घटना जब घटी तब अमेरिका के लोगों के बीच एकता की भावना की इतनी कमी थी कि उन्हें नहीं लगता था कि उनका एक राष्ट्र है। अमेरिका के लोगों के मन में एक राष्ट्र की भावना नहीं पनप सकी तो भारतीयों के मन में उसका पनपना कितना कठिन है इसका अंदाजा लगाया जा सकता है। मुझे वे दिन याद हैं जब राजनीति के लोगों को "भारतीय लोग' कहने से कितनी कोफ्त हुआ करती थी। " भारतीय राष्ट्र!" कहलाना उन लोगों को पसंद था। मेरी राय में अपना एक राष्ट्र है इस पर विश्वास करना यानी जो अस्तित्व में नहीं है उसके अस्तित्व में होने का भ्रम पालना। हजारों जातियों में बंटी जनता का एक राष्ट्र कैसे बन सकता है? सामाजिक और मानसिक नजरिए से हम अभी भी एक राष्ट्र नहीं हैं इसका अहसास हमें जितने जल्दी होगा उतना हमारे लिए अच्छा होगा। उसके बाद ही हमें एक राष्ट्र होने की जरूरत कितनी महत्वपूर्ण है इसका पता चलेगा। हमारे

उद्देश्य की पूर्ति के लिए किन उपायों का और किन मार्गों का अनुसरण करना है इस पर हम गंभीरतापूर्वक सोचने लगेंगे। इस उद्देश्य तक पहुंच पाना भी बहुत कठिन है। अमेरिका के लोगों के लिए जितना मुश्किल था उससे कई गुना मुश्किल है। अमेरिका में जाति की समस्या नहीं है। **भारत में जातियां हैं। जातियां राष्ट्रविरोधी हैं। पहली बात, वे सामाजिक जीवन में फूट डालती हैं। जातियां राष्ट्रविरोधी हैं क्योंकि वे जातियों के बीच आपसी तिरस्कार कटुता और द्वेष की भावना निर्माण करती हैं।** हमें अगर वास्तव में राष्ट्र बनना है तो इन सभी मुश्किलों से पार पाना होगा। राष्ट्र निर्माण के बाद ही असल में बंधुभाव देखने को मिलेगा। बंधुत्व बिना समता और स्वतंत्रता की बात करना केवल ऊपरी रंग की परत, केवल बाहरी दिखावा होगा।

हमारे सामने अब जो मुश्किल काम हैं उनके बारे में मेरी ये प्रतिक्रियाएं हैं। कुछ लोगों के लिए आनंददायी नहीं हैं ऐसा लग सकता है। इस देश में राजनीतिक सत्ता केवल मुट्ठी भर लोगों की बपौती या मिलकियत भर रह गई है। ज्यादातर लोग केवल बोझ ढोने वाले प्राणी ही नहीं वरन् शिकार बन कर रह गए हैं। कोई इस बात से इनकार नहीं कर सकता। इससे वे न केवल विकास के मौकों से बल्कि मानवीय जीवन का महत्व जानने से भी वंचित रहने वाले हैं। इतना उनका अधःपतन हुआ है। अस्पृश्य लोग अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों से, अपने ऊपर चलाई जाने वाली हुकूमत से ऊब गए हैं। खुद ही राज चलाने को वे आतुर हो गए हैं। अस्पृश्य वर्ग में निर्माण हुई इन तीव्र भावना को वर्ग संघर्ष और वर्गयुद्ध बनने तक बढ़ने नहीं देना चाहिए। इसका असर विभाजन में हो सकता है। वह निश्चित रूप से विनाशकारी दिन होगा। अब्राहम लिंकन ने कहा है कि विभाजित घर ज्यादा समय तक टिक नहीं सकता। उनकी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी उनके लिए मौके उपलब्ध कर देना देश के हित में, आजादी की रक्षा के हित में, फिलहाल सत्ता का उपभोग कर रहे मुठ्ठी भर लोगों के हित में और कुल मिलाकर जनतांत्रिक संरचना बनाए रखने के लिए ज्यादा उपयुक्त होगा। जीवन के सभी क्षेत्र में समता और बंधुत्व स्थापित करने से ही यह संभव हो सकता है। इसीलिए मैं इस बात पर इतना जोर दे रहा हूं। सभागृह को मैं ज्यादा थकाना नहीं चाहता। आजादी खुशी की बात है इसमें कोई दो राय नहीं लेकिन इस आजादी के साथ हमारे कंधों पर बहुत बड़ी जिम्मेदारियां आई हैं इस बात को हमें नहीं भूलना चाहिए। आजादी के कारण अब किसी बुरी बात के लिए हम अंग्रेजों को जिम्मेदार नहीं ठहरा सकेंगे। इसके बाद अगर कुछ बुरा होगा तो उसके लिए अपने अलावा किसी दऔर को हम जिम्मेदार नहीं ठहरा सकेंगे। अनुचित प्रसंग होने का बड़ा खतरा है। समय तेजी से बदल रहा है। हमारे लोग भी नई-नई विचारधाराओं को टटोल रहे हैं। लोगों के राज से अब वे ऊब रहे हैं। अब वे लोगों के लिए

राज चाहते हैं। राज लोगों का, लोगों द्वारा चुना हुआ है अथवा नहीं इसकी चिंता अब वे नहीं करेंगे। जिस संविधान में हम लोगों का, लोगों के लिए चुने शासन के तत्व का जतन कर रहे हैं उसे अगर सुरक्षित रखना हो तो अपनी राह में क्या अड़चनें हैं इसे पहचानना होगा, जिससे कि लोग लोगों द्वारा चुने गए राज्य से लोगों के लिए राज्य की ओर मुड़ेंगे। इस दिशा में आगे बढ़ने में हमें कमजोर नहीं पड़ना है। देश की सेवा करने का यही एकमात्र उपाय है। दूसरा अगर होगा तो मुझे पता नहीं है।"

(मूल अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद संध्या पेडणेकर द्वारा किया गया है।)

---

26 जनवरी, 1950 के दिन हम एक विसंगतिपूर्ण समाज में प्रवेश करने वाले हैं। राजनीति में हमारे पास समता होगी, लेकिन सामाजिक और आर्थिक जीवन में असमानता होगी। राजनीति में हम हर व्यक्ति का एक वोट और हर वोट का समान मूल्य वाले सिद्धांत को मान्यता देंगे। सामाजिक और आर्थिक संरचना के कारण अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में हर व्यक्ति का समान मूल्य वाला सिद्धांत हम नकारते रहेंगे। इसप्रकार के परस्पर विरोधी जीवन में हम और कब तक जिएंगे? आर्थिक और सामाजिक जीवन में हम और कब तक समानता को नकारते रहेंगे? अगर अधिक समय तक हम उसे नकारते रहेंगे तो अपना राजनीतिक जनतंत्र हम खुद संकट में डालेंगे इसमें कोई दो राय नहीं। इस विसंगति को जितनी जल्दी हो सके हमें खत्म कर देना है। अन्यथा जिन्हें विषमता जनित बुरे परिणामों को झेलना पड़ता है वे बहुत परिश्रम से इस सभा द्वारा निर्माण की गई राजनीतिक जनतंत्र की संरचना को नष्ट करेंगे।

गुरु नानक देव जयंती के अवसर पर

दिनांक 07 नवंबर 2022 को पंजाबी और हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र के द्वारा गुरु नानक देव जयंती के अवसर पर 'गुरु नानक वाणी की वर्तमान समय में प्रासंगिकता' विषय पर विचार-गोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें मुख्य वक्ता के तौर पर हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ. सुभाष चन्द्र, पंजाबी विभाग के अध्यक्ष डॉ. कुलदीप सिंह और डॉ. परमजीत कौर सिद्धू शामिल हुए।

डॉ. सुभाष चन्द्र ने कहा कि गुरु नानक देव जी का व्यक्तित्व एकदम क्रांतिकारी, विद्रोही, तर्कशीलता से संचित है। अहंकार को त्यागकर, मानवता की सेवा करना ही मनुष्य की परम धर्म है। नानक जी कहते है-

जे तऊ प्रेम खेलण का चाऊ,सिर धर तली, गली मेरे आऊ

इत मारग पैर धरी जै,सिर दीजै काण न कीजै।

गुरू नानक देव जी ने अपने जीवन में चार उदासी की और उस समय के संत-महात्माओं के पास गए और उनके दिए सिद्धांतों की जांच की व सत्य को परखा। उसी का परिणाम था कि बाद में व्यवहारिक ज्ञान को समेटते हुए गुरु ग्रंथ साहिब की रचना की गई।

गुरू नानक देव मध्यकाल में भारत के पहले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने भारत से बाहर गए और दुनियां के ज्ञान की जांच परख की। आधुनिक युग में सारी दुनिया में स्त्रियों को बराबरी के लिए अनेक आन्दोलन किए है। लेकिन गुरु नानक देव के महिलाओं की समानता के लिए अपनी वाणी में प्रयोग किए और नारी के लिए सम्मान की बात की। एक लेखक राज्याश्रयों होकर अपनी क़लम राजा की प्रशंसा और गुणगान करने लगता है। गुरु

नानक देव ने तत्कालीन सत्ता की क्रूरता के बारे में और बाबर द्वारा किए गए आक्रमण के बारे में अपनी वाणी के माध्यम से अत्याचार के ख़िलाफ़ अपना विचार दिया।

राजा सींह, मुक़्क़दम कुत्ते, जाए जगाएन बैठे सुत्ते
चाकर नैहदा, पाइन घाऊ, रत्त-पित्त कुत्तहो चट जाहू
जित्थे जींआ होसी सार, नंकी बंडी लाइतबार

गुरू नानक देव जी ने अपने समय में फैले कुरीतियों, पाखंडो रूढ़ियों का विरोध अपनी वाणी के माध्यम से किया। उन्होंने कहा आचरण बाह्य सुन्दरता से नहीं बल्कि आंतरिक विचारों की सुन्दरता से बनता है। गुरु नानक की वाणी हमें अपने जीवन को देखने, समझने और आगे बढ़ने की प्रेरणा देते है।

डॉ. परमजीत कौर सिद्धू ने कहा-गुरु नानक देव जी की वाणी जीवन के ज़रूरी मुद्दों से जुड़ी है। गुरुवाणी समाज के लिए मस्तिष्क की खुराक है तो साहित्यकर्मियो के लिए चेतनशील कविता है जो एक मार्गदर्शन की काम करती है। गुरु नानक वाणी ने तत्कालीन समय में महिलाओं की स्थिति के बारे बताते हुए कहा था-

भंड जमिए, भंड निमिए, भंड मंगण ब्याह
भंड होवे दोस्ती, भंड चलै राह,
भंड मुआ, भंड भालिए, भंड होवे बंधान
सो क्यू मंदा आखिए, जित्त जम्मे राजान

डॉ. कुलदीप सिंह ने गुरु नानक वाणी के महत्व को बताते हुए कहा कि नानक वाणी की मुख्य विशेषता है कि वह मनुष्य बाह्य आचरण को महत्त्व न देकर मनुष्य के आंतरिक आचरण के विकास की पक्षधरता की समर्थन करती है। तत्कालीन सत्ता के व्यवहार और बाबर के आक्रमण से आम जनता के साथ हुए व्यवहार को नानक ने अपनी वाणी के माध्यम बताया। डॉ. कुलदीप से बताया नानक शब्द-ना और अनक वर्णों के योग से बना है जिसमें किसी भी प्रकार की भिन्नता, अनेकता के प्रतिरोध करके एकता को स्थापित करता है। गुरु नानक वाणी का निष्कर्ष भी एकता स्थापित करना है। गुरबाणी के मुख्य संदेश है

किव सचिआरा होईए, किव कुढ़ै तुटै पाल

सचिआर दो शब्दों से बनता है जिसमें सच भी शामिल है और आचरण भी। गुरु साहिब ने कहा है सत्य से ऊपर अगर कोई चीज है तो वह है आपका आचरण। जब तक दोनों का मेल नहीं होगा तब तक आपके विचार का प्रभाव दूसरों पर नहीं पडेगा। इसलिए सत्य के साथ आचरण बहुत महत्त्व है।

'गुरु नानक देव जी का सन्देश और हमारा समाज'

'देस हरियाणा' पत्रिका की ओर से गुरु नानक जयंती के अवसर पर 8 नवंबर 2022 को 'गुरु नानक देव जी का सन्देश और हमारा समाज' विषय पर एक व्याख्यान का आयोजन किया गया। मुख्य वक्ता डॉ. रविन्द्र गासो रहे।

डॉ. रविन्द्र गासो ने बोलते हुए कहा गुरु नानक जी गरीब, स्त्री, दलित के पक्ष में शोषण मुक्त समाज और उदार मानवतावाद का सन्देश देते हैं ।वे स्त्री को भगवान के बाद सर्वोच्च स्थान देते हैं। डॉ.गासो ने कहा गुरु जी सूतक, खानपान, चमत्कारों, तन्त्र मन्त्र आदि से जुड़े अंधविश्वासों का खण्डन कर अहंकार रहित जीवन जीने का सन्देश देते हैं।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए आर. आर.फूलिया, रिटायर्ड आई.ए.एस.ने कहा गुरु नानक जी की जयंती मनाने का सबसे अच्छा तरीका उनके विचारों का मंथन करना है। देस हरियाणा पत्रिका के संपादक प्रोफेसर सुभाष चन्द्र ने कहा कि गुरु नानक जी संवाद और सौहार्द्र के विश्व कवि हैं । उन्होंने अपने समाज की सच्चाइयों को अपनी वाणी में व्यक्त किया। तत्कालीन बुद्धिजीवियों से संवाद रचाया। देश-दुनिया की यात्राएं की, अनुभव प्राप्त किया। वे सांझी संस्कृति के प्रतीक हैं। विकास साल्यान ने व्याख्यान का संचालन करते हुए गुरु जी को युग-द्रष्टा और युग स्रष्टा बताते हुए उनके सिद्धांत 'किरत करो-वंड छको-नाम जपो' की व्याख्या की।

अवसर पर डॉ.ओमप्रकाश करुणेश, डॉ. बृजेश कठिल,डॉ.एन. के.नागपाल, ओम सिंह अशफ़ाक़,जयपाल, मनजीत भोला, कपिल भारद्वाज, यशोदा, डॉ.सरिता चौधरी, देव दत्त, रजविन्द्र चंदी, हरपाल, नरेश कुमार, अंजू, रानी, योगेश शर्मा, गौरव, आर.के.बंसल, रमेश सुखीजा आदि उपस्थित रहे।

जनजाति गौरव दिवस

(दिनांक 15 नवंबर 2022 को हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र में जनजाति गौरव दिवस पर विचार-गोष्ठी का आयोजन किया गया है। यह दिवस बिरसा मुंडा की जयंती के अवसर पर मनाया जाता है। कार्यक्रम में मुख्य वक्ता के रूप में देस हरियाणा पत्रिका के संपादक प्रो. सुभाष चन्द्र और मुख्य अतिथि के रूप में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के कला एवं भाषा संकाय के अधिष्ठाता प्रो. बृजेश साहनी ने भाग लिया। ब्रजपाल ने संचालन किया तथा जसबीर सिंह ने धन्यवाद ज्ञापित किया – सं.)

बिरसा मुंडा का जन्मदिन 15 नवंबर 1875 को हुआ था। बिरसा मुंडा भारतीय स्वतंत्रता सेनानी, धार्मिक नेता और छोटा नागपुर पठार क्षेत्र के मुंडा जनजाति के लोक नायक थे। संथाल, तामार, कोल, भील, खासी और मिज़ो जैसे आदिवासी समुदायों ने कई आंदोलनों के माध्यम से भारत के स्वतंत्रता संग्राम में मजबूती से भाग लिया था। आज़ादी के लिए संथाल विद्रोह, खासी विद्रोह, फूकन एवं बरुआ विद्रोह, भूटिया लेप्चा विद्रोह, पलामू विद्रोह, खरवाड़ विद्रोह आदि अनेक ऐसे आंदोलन हैं, जिन्होंने अंग्रेज़ी शासन की नींव हिला दी। उन्होंने 19वीं शताब्दी के अंत में ब्रिटिश शासन के दौरान आधुनिक झारखंड और बिहार के आदिवासी क्षेत्रों में एक भारतीय जनजातीय आंदोलन का नेतृत्व किया। मुंडा विद्रोह 1899-1900 में रांची के दक्षिण में बिरसा मुंडा के नेतृत्व में सबसे महत्त्वपूर्ण आदिवासी आंदोलनों में से एक था। मार्च 1900 में अपनी गुरिल्ला सेना के साथ अंग्रेजों से लड़ते हुए मुंडा को चक्रधरपुर के जामकोपाई जंगल में गिरफ्तार कर लिया गया। कुछ महीने बाद, 9 जून को हिरासत में रहते हुए उनका निधन हो गया। बिरसा मुंडा ने नारा दिया था हमारी धरती, हमारी राज और उलगुलान जिंदाबाद।

शुरुआत में हिन्दी विभाग की **शोधार्थी अंजू** ने आदिवासी समाज के जीवन, संघर्ष, जिजीविषा के साथ-साथ उनके साहित्य में जीवन दर्शन के बारे में विस्तृत जानकारी दी। उन्होंने बताया आदिवासी साहित्य शौर्य और विद्रोह का साहित्य है। आज हम आदिवासी समाज के बारे में जब हम चर्चा करते है तो हमें असभ्य प्रतीत होने वाले, कंद मूल खाने वाले और शरीर पर छाल लपेटे हुए व्यक्ति की तस्वीर को आदिवासी समझते है

और हम सभ्यता के नाम पर अपने आपको सुसंस्कृत मानव समझते है लेकिन इसके उलट आदिवासी समाज प्रकृति का संरक्षण कर रहा है और हम प्रकृति का दोहन कर रहे है। आज के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मानव बीमारियों से गिरा हुआ है और बड़े-बड़े वैज्ञानिक हमें प्रकृति के नज़दीक जाने को बोल रहे है लेकिन जो प्रकृति के नज़दीक है उन्हें हम विकास के नाम पर विस्थापित कर रहे हैं। जब किसी समाज में विस्थापन होता है उसके साथ विस्थापित होती है उनकी भाषा, संस्कृति और सभ्यता।

प्रो. बृजेश साहनी ने कहा लिखित साहित्य से अधिक महत्त्वपूर्ण होता है मौखिक साहित्य। लेकिन ब्रिटेन के नवजागरण ने हमें बताया की लिखित साहित्य, मौखिक साहित्य से आगे है और वहीं से ज्ञान को वर्गीकरण करने और विभाजित करने की परंपरा का विकास हुआ जिससे चिन्तन बहुत सारी चीजें छूट गयी। एक विषय के व्यक्ति को दूसरे विषयों ज्ञान होना आवश्यक है।

दुनिया को हम कैसे देखते है, कैसे जानते है, इसके लिए दर्शन में ज्ञानमीमांसा है। मूल निवासी दुनिया को अलग तरह से देखते है। मूल निवासी लेखक कहता है हमारा निर्माण इस दुनिया में हुआ और इसी में हमने जीना है। मूल निवासियों के साहित्य में किसी भी प्रकार विभाजन हमें देखने को नहीं मिलता उसमें मानव, पशु और प्रकृति में कोई विभाजन नहीं है लेकिन पाश्चात्य चिंतन इसको हमेशा बांटकर ही देखता है।

वस्तुओं और विचारों को नया आकार कैसे देना है यह समझ हमें मूल निवासियों और आदिवासियों का साहित्य देता है। मुख्यधारा के साहित्य में लेखक अकेला ही सब कुछ है और मूल निवासी साहित्य में लेखक पुरी कम्यूनिटी का प्रतिनिधित्व करता है। अपने दैनिक जीवन में आम-आदमी किस तरह है प्रकृति का दोहन हो रहा है जो आज विश्व की सबसे बड़ी समस्या है इसका समाधान हमें आदिवासियों के जीवन से सीख सकते है।

प्रो. सुभाष चन्द्र ने कहा की पूरी दुनिया में शोषण, अत्याचार, विस्थापन की त्रासदी की विरासत साझी है और हमारे पालन पोषण, हमारे पूर्वग्रहों और हमारे परिवेश से हमारी धारणा बनती है अगर हम उनको न तोड़े तो वह हमारे विकास में बाधक बनती है। आज मनुष्य सुन्दर वस्त्र पहनकर अपने आपको सभ्य मानते है और विकास के क्रम में सबसे अग्रिम मानते है लेकिन यह देखने की आवश्यकता है कि जो समस्या सभ्य समाजों में है क्या वह समस्या आदिवासी कहे जाने वाले समाज में भी है जैसे दहेज की समस्या, भ्रूण हत्या, लैंगिक असमानता आदि। डॉ. सुभाष चन्द्र ने बिरसा मुंडा, तिलका मांझी आदि के माध्यम से आदिवासियों के इतिहास और जीवन के संघर्ष के बारे में बताया। इस मौके पर हिन्दी विभाग के शोधार्थी और विद्यार्थी मौजूद थे।

देस हरियाणा प्राप्त करने के लिए संपर्क करें

कुरुक्षेत्र	-	विकास साल्याण	9050182156
	-	योगेश शर्मा	9896957994
यमुनानगर	-	बी मदन मोहन	9416226930
अंबाला शहर	-	जयपाल	9466610508
करनाल	-	अरुण कैहरबा	9466220145
इंद्री	-	दयालचंद जास्ट	9466220146
घरौंडा	-	राधेश्याम भारतीय	9315382236
	-	नरेश सैनी	9896207547
कैथल	-	कुलदीप	9729682692
जीन्द	-	मंगतराम शास्त्री	9416513872
टोहाना	-	बलवान सिंह	9466480812
नरवाना	-	सुरेश कुमार	9416232339
सोनीपत	-	विरेंद्र वीरू	9467668743
पानीपत	-	दीपचंद निर्मोही	9813632105
पंचकुला	-	सुरेंद्र पाल सिंह	9872890401
	-	जगदीश चन्द्र	9316120057
रोहतक	-	अविनाश सैनी	9416233992
	-	अमन वासिष्ठ	9729482329
भिवानी	-	का. ओमप्रकाश	9992702563
दादरी	-	नवरत्न पांडेय	9896224471
सिरसा	-	परमानंद शास्त्री	9416921622
	-	राजेश कासनिया	9468183394
हिसार	-	राजकुमार जांगड़ा	9416509374
महेन्द्रगढ़	-	अमित मनोज	9416907290
मेवात	-	सिद्दीक अहमद मेव	9813800164
शिमला	-	एस आर हरनोट	01772625092
	-	रितिका	9810171896
राजस्थान (परलीका)	-	विनोद स्वामी	8949012494
चंडीगढ़	-	ब्रजपाल	9996460447
	-	पंजाब बुक सेंटर, सैक्टर 22	
दिल्ली	-	संजना तिवारी , नजदीक श्रीराम सेंटर,	
	-	आरके मैगजीन , मौरिस नगर, थाने के सामने	
	-	एनएसडी बुक शॉप	
ई-प्राप्ति	-	www.notnul.lcom/desharyana	